।।ओ३म्।।

कालजयी सन्त

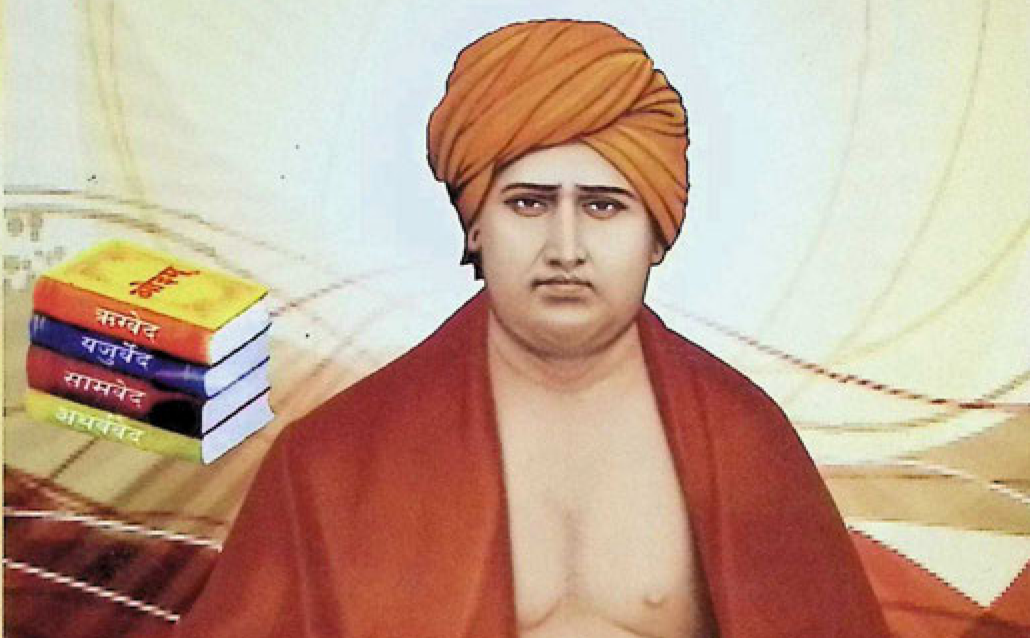

महर्षि दयानन्द सरस्वती

दीपचन्द्र निर्मोही

महर्षि दयानन्द सरस्वती क्या हैं ?

- **दयानन्द नाम है**—वेद तथा वैदिक संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठा का।
- **दयानन्द नाम है**—राष्ट्र की अस्मिता का, मानवता के संरक्षण एवं संवर्धन का।
- **दयानन्द नाम है**—ऐसी जीवन पद्धति का जिसके बिना न व्यक्ति का निर्माण हो सकता है न समाज का।
- **दयानन्द नाम है**—उस विराट् अग्नि का, जो भीतर-बाहर के मैल को राख बनाकर व्यक्ति और समाज को कुन्दन बना देती है।
- **दयानन्द नाम है**—उस प्रबल प्रभञ्जन का, जो रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, बहुदेवतावाद, कुरीतियों को जड़मूल से उखाड़ कर फैंक देता है।
- **दयानन्द नाम है**—उस सम्पूर्ण वैचारिक क्रान्ति का, जो समूचे विश्व को वेद के आधार पर एक नूतन तार्किक, धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आत्मबोध देती है।
- **दयानन्द नाम है**—भारतीय स्वतन्त्रता हेतु प्रथम शंखनाद करने का।
- **दयानन्द नाम है**—गुरुकुल-पद्धति के पुनरुद्धारक का।
- **दयानन्द नाम है**—ऋषि-मुनियों की परम्परा को पुनरुज्जीवित करने का।
- **दयानन्द नाम है**—आध्यात्मिकता के सत्य को धरातल पर उद्घाटित करने वाले अध्यात्म के स्रोत का।
- **दयानन्द नाम है**—उस जागरण का जो स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वराज्य का एक साथ सन्देश सुनाता है।
- **दयानन्द नाम है**—विधर्मियों के सांस्कृतिक आक्रमण को विफल करने वाले एक योद्धा का।
- **दयानन्द नाम है**—दया के उस सागर का जिसकी दया से अनाथ, दलित, विधवा नारी व गोमाता के करुण-क्रन्दन को त्राण मिला।

ओ३म्

कालजयी सन्त

महर्षि दयानन्द सरस्वती

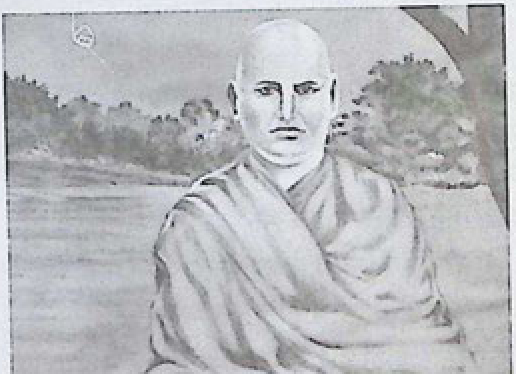

दीपचन्द्र निर्मोही

प्रकाशक

सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजीकृत)

पानीपत (हरियाणा)

प्रकाशक : सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत (हरि०)
(पंजीकरण सं० : 322, दिनांक : 29.11.1999)

कार्यालय : 673-एल, माडल टाउन, पानीपत-132103 (हरि०)

पत्रालय : आर्यसमाज, थर्मल कालोनी,
पानीपत-132105 (हरियाणा), 094161-22289

संस्करण : 7वां, प्रतियाँ 27000; पूर्व संस्करणों की प्रतियाँ 78000
फरवरी 2017 ई०, महर्षि बोध उत्सव संस्करण

© सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत, हरियाणा

प्राप्ति-स्थान : 1. वानप्रस्थ साधक-आश्रम, आर्यवन, रोजड़ (गुजरात)
2. आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक
3. आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश, लखनऊ
4. दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली
5. आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तराखण्ड, देहरादून
6. आर्य प्रतिनिधि सभा गुजरात, अहमदाबाद
7. आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, जयपुर
8. छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दुर्ग
9. आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य प्रदेश, भोपाल
10. आर्य प्रतिनिधि सभा बिहार, पटना
11. प्रादेशिक आर्य उपसभा हरियाणा, फरीदाबाद
12. आर्य प्रतिनिधिसभा पंजाब, जालन्धर
13. आर्य प्रतिनिधि सभा हिमाचल प्रदेश, शिमला
14. आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू और कश्मीर, जम्मू

सहयोग राशि : ₹ 45.00

टाईप-सैटिंग : स्वस्ति कम्प्यूटर्स, करनाल (हरि०) 09255912314

मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स, शाहदरा, दिल्ली

Acharya Devvrat
Governor
Himachal Pradesh

सत्यमेव जयते

आचार्य देवव्रत
राज्यपाल
हिमाचल प्रदेश

संदेश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हो रही है कि आधुनिक भारत के महान् चिन्तक, समाज-सुधारक, युगनिर्माता **महर्षि दयानन्द सरस्वती** के जीवन-चरित्र को श्री दीपचन्द्र निर्मोही जी द्वारा लघुरूप में लिखित **'कालजयी सन्त'** नामक पुस्तक को जन-जन तक पहुँचाने हेतु **'सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास'** (पंजी०) पानीपत (हरियाणा) द्वारा प्रकाशन किया जा रहा है।

महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना की और मानव-मात्र के कल्याणार्थ वैदिक परम्परा को मुख्य स्थान दिलाने के लिए अपने जीवन को स्वाहा कर दिया। वे वैदिक-विद्या और संस्कृत-भाषा के महान् तत्त्वदर्शी विद्वान् थे। महर्षि ने देश में फैली छुआछूत के विरुद्ध सर्वप्रथम आवाज उठाई। उन्होंने ही महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने एवं वैदिक क्रियाओं को करने का अधिकार दिलवाया।

न्यास संस्थापक एवं अध्यक्ष त्यागी, तपस्वी, कर्मयोगी, महर्षि के समर्पित व्यक्तित्व **महात्मा वेदपाल आर्य** ने इस पुस्तक को जन-जन तक पहुँचाने का जो बीड़ा उठाया है इस हेतु वे धन्यवाद व बधाई के पात्र हैं। यह इतना बड़ा कार्य तभी सम्भव हो पायेगा जब हम सभी की प्रेरणा, सहयोग, आशीर्वाद इन्हें प्राप्त होता रहेगा। मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि प्रभु इन्हें उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्रदान करें।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक के माध्यम से पाठकों को महर्षि के जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं को गहनता से जानने व समझने का सुअवसर प्राप्त होगा। पुस्तक के सफल प्रकाशन के लिए मेरी शुभकामनाएँ।

(आचार्य देवव्रत)
राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश

आशीर्वचांसि

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी विद्या, बल, धर्म, योग, तर्क-युक्ति, प्रमाण, ऊहा, प्रतिभा, सुदृढ़ इच्छा, निर्भीकता आदि अनेक गुणों से युक्त एक असाधारण व्यक्तित्व सम्पन्न, धार्मिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व राष्ट्रभक्त संन्यासी थे। उन्होंने समाज से पृथक् हो शान्त-एकान्त वातावरण में केवल व्यक्तिगत उन्नति के लिए ही अपना सारा समय, शक्ति, बुद्धि नहीं लगाई अपितु समाज व राष्ट्र के उद्धार के लिए भी लेखन, प्रवचन, शास्त्रार्थ, ग्रन्थ-प्रकाशन, अध्यापन, संवाद, सम्मेलन आदि अनेकविध कार्यों को एक साथ चलाकर अल्प समय में ही तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला।

महर्षि जी ने जड़पूजा, बहुदेवतावाद, रुढ़ियों, कुरीतियों, धार्मिक अन्ध-विश्वासों, पाखण्डों, छुआछूत, काल्पनिक भगवान्, देवी-देवताओं के झूठे जाल में एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों में फंसे देश-विदेश के नर-नारियों को बाहर निकाला। वेद के आधार पर वर्णित निराकार ईश्वर की ओर मोड़ कर उन्हें वेद मार्ग का पथिक बनाया। उन्होंने पुरजोर रूप से यह उद्घोषित भी किया कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व वेदमार्ग पर चल कर ही सुख-शान्ति को प्राप्त हो सकता है अन्यथा और कोई मार्ग नहीं है। इसलिए उन्होंने **'वेदों की ओर लौटो'** का नारा भी दिया।

मैं यह समझता हूँ कि इस पुस्तक में वर्णित महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन की विशेष घटनाओं को पढ़ कर सभी नर-नारियों को प्रेरणा मिलेगी और विशेष रूप से किशोरों हेतु उपयोगी रहेगी। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व का चरित्र उन्नत होगा। सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत (हरियाणा) के अध्यक्ष व संचालक, त्यागी, सत्यनिष्ठ, ऋषि-भक्त, कर्मयोगी महात्मा वेदपाल आर्य द्वारा न्यास के माध्यम से "कालजयी सन्त" (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पुस्तक के संस्करण लगातार प्रकाशित हो रहे हैं—यह हर्ष की बात है। निष्काम भावना से महर्षि के पावन जीवन-चरित्र को जन-जन तक प्रसारित करने का यह प्रेरणाप्रद कार्य हो रहा है। ईश्वर से महात्मा जी को आन्तरिक आनन्द व सन्तोष की प्राप्ति होगी। हमारी ओर से उन्हें शुभ कामनाएं व आशीर्वाद।

ज्ञानेश्वरार्यः
अधिष्ठाता, वानप्रस्थ साधक आश्रम,
रोजड़ (गुजरात)

प्रकाशकीय

जो भारतवर्ष (आर्यावर्त) अपने अतीत के गौरव और गरिमा के कारण विश्वगुरु कहलाता था वह महाभारत काल के बाद धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में आई हुई विकृतियों एवं कुरीतियों में फँस कर पतन के मार्ग पर चला गया था और विदेशी शासकों द्वारा शासित हो रहा था। ऐसे अन्धकारमय वातावरण में ईश्वर की असीम कृपा से तत्त्वज्ञान ज्योति की किरण महर्षि दयानन्द सरस्वती के रूप में इस धरा पर अवतरित हुई। महर्षि ने फिर से खोई हुई प्राचीन गरिमा एवं गौरव को स्थापित करने एवं सत्य सनातन वैदिक धर्म की मान्यताओं एवं सिद्धान्तों को पुनर्जीवित करने हेतु स्वयं को अर्पित कर दिया। उन्होंने वेद-प्रचारार्थ अनेक तपस्वी महात्माओं, विद्वानों को भी तैयार किया। क्रान्ति के अग्रदूत एवं युगनिर्माता महर्षि ने हमें भूला हुआ वेदमार्ग बतलाया और यह भी उद्घोषित किया कि वेद सार्वभौमिक (Universal) और सर्वकल्याणार्थ हैं, अत: वेदों वाले महर्षि के जीवन वृत्तान्त को बाल, किशोर, युवा, वृद्ध तथा सभी नर-नारियों तक पहुँचाने हेतु **'कालजयी सन्त'** नामक पुस्तक के रूप में सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत पिछले कुछ वर्षों से प्रकाशित कर रहा है। इस पुस्तक को जन-जन तक पहुँचाने की प्रेरणा आशीर्वाद, सहयोग, प्रथमत: आचार्य श्री ज्ञानेश्वर जी, अधिष्ठाता, वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़, गुजरात से ही प्राप्त हुआ और लगातार हो रहा है।

आर्यजगत् की अन्य विभूति पूज्य स्वामी सत्यपति जी रोजड़, डॉ० देवव्रत जी आचार्य (राज्यपाल हिमाचल प्रदेश), श्री पूनम सूरी प्रधान डी.ए.वी. नई दिल्ली, डॉ० अशोक चौहान एमिटी नोएडा, महाशय धर्मपाल जी आर्य एम.डी.एच. दिल्ली, प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु (अबोहर) आचार्या डॉ० सुमेधा, आचार्या डॉ० सुकामा, कन्या गुरुकुल चोटीपुरा, डॉ० वेदपाल मेरठ, डॉ० रामप्रकाश कुरुक्षेत्र, डॉ० विनय विद्यालंकार उत्तराखण्ड, डॉ० सोमदेव मुम्बई, डॉ० महेश विद्यालंकार दिल्ली, डॉ० ज्वलन्त कुमार अमेठी, डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार कुरुक्षेत्र, आचार्य अखिलेश्वर हरिद्वार, स्वामी

प्रणवानन्द दिल्ली, स्वामी देवव्रत फरीदाबाद, स्वामी बलेश्वरानन्द पुण्डरी, स्वामी आर्यवेश दिल्ली, स्वामी सम्पूर्णानन्द करनाल, स्वामी धर्मेश्वरानन्द गुरुकुल पूठ, स्वामी गणेशानन्द मध्यप्रदेश, स्वामी सुखानन्द श्रीगंगानगर, स्वामी सर्वानन्द हिसार, श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल, अहमदाबाद, श्री मिठाई लाल सिंह मुम्बई, श्री प्रकाश आर्य मऊ (मध्यप्रदेश), श्री विजय सिंह भाटी जोधपुर, श्री धर्मपाल आर्य दिल्ली, श्री विनय आर्य दिल्ली, श्री अशोक आर्य उदयपुर आदि के परामर्श, प्रेरणा व सहयोग के साथ-साथ प्रसिद्ध समाजसेवी श्री राकेश जैन लुधियाना, श्री शिवपाल चौधरी चण्डीगढ़, श्री दलजीत सिंह श्री राजसिंह सहरावत, श्री सुरेन्द्र तोमर गुरुग्राम, चौ० रणवीर सिंह आर्य, श्री इन्द्रजीत बत्रा, श्री धर्मवीर सिंह आर्य, श्री कमल कान्त आर्य पानीपत एवं सभी देवियों और सज्जनों ने इस पुण्य कार्य में खुले हाथों से आर्थिक सहयोग देकर मेरे उत्साह को न्यून नहीं होने दिया है। भ्राता महेन्द्र सिंह आर्य करनाल, श्री रमेश आर्य दिल्ली ने इस पुस्तक को बनाने, सजाने-संवारने का पूर्ण प्रयास किया है, आदि इन सभी के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

लेखनी के धनी पुस्तक लेखक हिन्दी के सुपरिचित साहित्यकार सम्मानित श्री दीपचन्द्र जी निर्मोही पानीपत के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ; जिन्होंने सरल, सुबोध और प्रवाहमयी शैली में संक्षेप से महर्षि की जीवन गाथा लिखकर इसके प्रकाशन के सभी अधिकार व दायित्व हमें (सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास पानीपत) को सौंप दिये हैं।

यदि आप सभी का पूर्व की भांति भविष्य में भी प्रेरणा, आशीर्वाद व सहयोग मिलता रहा तो हम 'कालजयी सन्त' पुस्तक की सुगन्ध प्रभु अनुकम्पा से देश की सीमाओं से परे समस्त विश्व के प्रांगण में फैला देंगे। अन्त में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इस कार्य में सहयोगी सभी नर-नारियों का हृदय से पुनः धन्यवाद व आभार व्यक्त करता हूँ।

विनीत

वेदपाल आर्य

अध्यक्ष, सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०)

प्राक्कथन

जब-जब समाज में विकृतियां उत्पन्न होती हैं, तब-तब समाज में समाज सुधारक सन्तों का प्रादूर्भाव होता है। ऐसे सन्तों का स्मरण हो आना स्वाभाविक है, जिन्होंने स्वयं को होम कर समाज को पतन के गर्त में गिरने से बचाने के लिए अन्तिम सांस तक प्रयास किया। ऐसे सन्तों में एक निराले दिव्य आत्मा महर्षि दयानन्द सरस्वती अग्रिम पंक्ति में सर्वोच्च शिखर पर खड़े दिखाई देते हैं।

ऐसे सत्यज्ञानी, सत्यमानी, सत्यकारी मनीषी के सम्बन्ध में जानना आवश्यक है। यह समय की भी माँग है, अन्यथा समाज को पतन के गर्त में धंसते चले जाने की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। महर्षि के जीवनकाल में भी अनेक किशोरों व युवाओं का जीवन पतन के गर्त से निकल कर उत्तम मार्ग की ओर अग्रसर हुआ—जैसे मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) अमीचन्द आदि।

महर्षि सम्पूर्ण जीवन समाज के प्रत्येक क्षेत्र में निर्भर होकर नवजागरण का शंख फूंकते हुए दिखाई देते हैं। निश्चय ही समय की शिला पर इस कालजयी सन्त के चरण चिह्न स्पष्ट देखे जा सकते हैं। उन्हीं चिह्नों की ओर संकेत करने का प्रयास इस लघु जीवन चरित्र 'कालजयी सन्त' नामक पुस्तक के माध्यम से मैंने किया है। जिससे उन चिह्नों का अनुसरण कर नई पीढ़ी अपना लक्ष्य निर्धारित कर सके।

सच्चाई यह है कि इस पुस्तक में मेरा अपना कुछ नहीं है। सभी कुछ उन विद्वान् लेखकों का है, जिन्होंने मुझ से पूर्व अथक परिश्रम कर महर्षि दयानन्द के प्रेरक जीवन को लेखबद्ध किया। मैं उन सभी विद्वान् लेखकों, सम्पादकों और प्रकाशकों के प्रति विनम्रतापूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ, जिनसे इस पुस्तक के लेखन में मैंने सहायता प्राप्त की है।

यह अकृतज्ञता होगी यदि मैं सत्यनिष्ठ, कर्मठ, महर्षि के प्रति समर्पित महात्मा वेदपाल आर्य का धन्यवाद न करूँ। यदि उनका प्रकाशन सहयोग न होता तो इस पुस्तक का इस रूप में आपके हाथ में आना सम्भव नहीं था, अत: 'कालजयी सन्त' पुस्तक के प्रकाशन का सम्पूर्ण अधिकार व दायित्व अध्यक्ष सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०) पानीपत (हरि०) को ही सौंप दिया है।

—दीपचन्द्र निर्मोही

अनुक्रम

क्र०सं०	विषय	पृष्ठ
1.	जन्म-काल, स्थान व कुल-परिचय	2
2.	आत्मबोध की किरण	3
3.	वैराग्य का उदय	6
4.	वैवाहिक बन्धन की तैयारी	7
5.	गृह-त्याग	8
6.	मूलशंकर से शुद्धचैतन्य	10
7.	योगियों की खोज में	10
8.	सिद्धपुर मेले में पिता से अन्तिम भेंट	11
9.	संन्यास की दीक्षा चाणोद में	13
10.	योग-साधना एवं स्वाध्याय	14
11.	हरिद्वार कुम्भ के मेले में	14
12.	सन् 1857 के आस-पास	14
13.	ज्ञानार्जन के लिए कठिन पर्वत-यात्राएँ	15
14.	पर्वतीय दुर्गा-भक्तों से प्राण-त्राण	16
15.	ओखीमठ के स्वामित्व का प्रस्ताव ठुकराया	17
16.	अलकनन्दा (गंगा) नदी की दुर्गम यात्रा	18
17.	ग्रन्थ का परीक्षण	19
18.	जिज्ञासु व निर्भीक दयानन्द नर्मदा नदी के घोर घने जंगल में	20
19.	गुरु के चरणों में	22
20.	गुरु-सेवी दयानन्द	24
21.	संकल्पी स्वामी दयानन्द	24
22.	सच्चा साधक	25
23.	श्रद्धालु व गुरुभक्त स्वामी दयानन्द	26
24.	दयानन्द-सा दूसरा शिष्य नहीं	27
25.	गुरु-दक्षिणा	28
26.	समाजोत्थान के लिए प्रस्थान	29

27.	ईश्वर सर्वव्यापक होने से साकार नहीं हो सकता	30
28.	आपके सामने बोलने का साहस किसी का नहीं होता	31
29.	पुष्कर में महर्षि का प्रभाव	32
30.	अजमेर में पादरियों से शास्त्रार्थ	32
31.	ब्रह्मा जी विद्वान् व सच्चरित्र थे	32
32.	कर्नल ब्रुक्स से महर्षि की धर्मचर्चा व गोपालन का महत्त्व	33
33.	महर्षि के भय से जब महन्त ने नगर ही छोड़ दिया	34
34.	मैं शास्त्रार्थ ही नहीं, शस्त्रार्थ भी जानता हूँ	34
35.	महाराजा जयपुर का निमन्त्रण	35
36.	गुरु से अन्तिम भेंट	35
37.	कुम्भ के मेले में पाखण्ड-खण्डनी पताका (हरिद्वार)	36
38.	महादेव की पूजा मन्दिर में क्यों?	38
39.	मैं तो लोगों को बन्धन-मुक्त कराने आया हूँ	39
40.	स्त्रियों को गायत्री-जाप का अधिकार	40
41.	मूर्तियों का गंगा में विसर्जन कर्णवास में	41
42.	शीत-निवारण में योग का प्रभाव व अभ्यास	41
43.	'अहं ब्रह्मास्मि' का तर्कसंगत प्रतिवाद	42
44.	छुआछूत के विरोधी	42
45.	कर्णवास में रासलीला का खण्डन एवं राव कर्णसिंह से सामना	43
46.	मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ में महर्षि जी का सामना सम्भव नहीं	45
47.	वही आत्म-प्रेमी है	47
48.	स्वार्थी जनों द्वारा समाज-सुधारक महर्षि दयानन्द की प्राण-हानि का प्रयास	48
49.	अन्न दूषित नहीं	49
50.	अच्छा कर्म ही अच्छा है	50
51.	दयालु महर्षि दयानन्द	51
52.	महर्षि की प्रेरणा से पाठशाला की स्थापना	51
53.	पहलवान शर्मिन्दा हो गए	52

54.	मन्दिर-निर्माण की अपेक्षा समाज-सेवा के संस्थान श्रेष्ठ हैं	52
55.	मूर्तियां बेल-पत्र नहीं खातीं	53
56.	स्नेहशील व उदारचेता महर्षि दयानन्द	53
57.	वीतराग व तपस्वी महर्षि दयानन्द	54
58.	काशी का ऐतिहासिक शास्त्रार्थ	55
59.	वैर-भाव से परे	60
60.	मैं खुद ही बलि चढ़ा जा रहा हूँ	61
61.	सिंह-सी दहाड़	62
62.	विनम्रता व क्षमा की प्रतिमूर्ति	62
63.	अनधिकृत वस्तु का ग्रहण चोरी	63
64.	अपने बल पर भरोसा	64
65.	राजपूतों को यज्ञोपवीत दिया	65
66.	निर्धन किसान की रोटियाँ	65
67.	महर्षि का कर्णवास में पुनः पदार्पण	66
68.	राव कर्णसिंह लज्जित हुआ और भयभीत भी	66
69.	मुझे बिरादरी से निकाले जाने का भय नहीं	68
70.	हम बाबा आदम और माता हव्वा के जमाने के हैं	69
71.	केशवचन्द्र सेन से भेंट	70
72.	सत्यासत्य जानते हैं, पर मानते नहीं	72
73.	और छप्पर बन गया	72
74.	कौवा अधिक विद्वान् है	73
75.	यज्ञ का महत्त्व	73
76.	समाधिस्थ ऋषि-दर्शन से भक्त की तृप्ति	74
77.	यही मोक्ष का मार्ग है	74
78.	वैष्णव मतावलम्बी द्वारा प्राणहरण की चेष्टा	75
79.	वैरागी साधु पर प्रभाव	76
80.	आर्यसमाज-नामकरण	77
81.	परिश्रमी निर्धन नहीं होते	77
82.	पोथियों के पाठ नहीं बेचता	78
83.	द्वेष से द्वेष शान्त नहीं होता	78

84.	सत्य की राह से नहीं हट सकता	79
85.	सहृदयी महर्षि दयानन्द	79
86.	आर्यसमाज की स्थापना	80
87.	वेदमन्त्र सुनने का अधिकार सभी को	80
88.	केशों का बढ़ाना त्याग व तपस्या का लक्षण नहीं है	81
89.	मूर्तिपूजा अवैदिक है	82
90.	पूना में प्रवचन-माला	83
91.	नियमित दिनचर्या	83
92.	मूर्तिपूजा किसी भी मत की ठीक नहीं	84
93.	अज्ञानवश बच्चे मिट्टी खाते हैं, बड़े होकर नहीं	85
94.	समाज-सुधारकों की बैठक	85
95.	चांदापुर के मेले में	86
96.	जो सत्य सनातन है, वही स्वीकार्य है	87
97.	पुनर्जन्म होता है	89
98.	अप्रसन्नता की परवाह नहीं	89
99.	वेदों में लौकिक आख्यान नहीं	90
100.	लाहौर में आर्यसमाज के दस नियम	91
101.	महर्षि दयानन्द की दया	92
102.	बड़प्पन का अर्थ	93
103.	पारस्परिक प्रेम का आधार एक साथ खाना नहीं है	93
104.	ब्रह्मचर्य का चमत्कार	94
105.	ज्ञानी भी, अज्ञानी भी	95
106.	जब वेद की प्रामाणिकता की सिद्धि में पत्थर मिले	96
107.	जन-कल्याण में मान-अपमान नहीं	96
108.	समालोचना करता हूँ, आलोचना नहीं	97
109.	सत्य का उपदेश मेरा धर्म	98
110.	अज्ञानी हैं, क्षमा कर दें	98
111.	माँगने में शोभा नहीं	99
112.	परमात्मा का उपदेश सबके लिए	100
113.	आत्मा ब्रह्म नहीं	101

114.	समयबद्धता	101
115.	महर्षि के बल की परीक्षा	102
116.	देश की प्रथम गोशाला	102
117.	महर्षि का हरिद्वार में पुनः आगमन (कुरीतियों का निवारण तथा ब्रह्मवाद का समाधान)	103
118.	वैदिक धर्मी के लिए सदाचार आवश्यक है	104
119.	योग में बड़ी शक्ति है	104
120.	सत्य का प्रकाश मेरा धर्म है	105
121.	पादरी स्काट से वार्ता	106
122.	जब परमात्मा की कृपा होगी (मुंशीराम की महर्षि से भेंट)	106
123.	लो, ये रहे वेद	107
124.	सत्य कहने में कोई भय नहीं	107
125.	मेरे प्रवचन विरेचक औषध के समान हैं	108
126.	मन-मन्दिरों से मूर्तियाँ हटाता हूँ	108
127.	थियोसोफिकल सोसायटी व आर्यसमाज में सिद्धान्त भेद	109
128.	तोप का भय दिखाने पर भी वेद की श्रुतियाँ ही निकलेंगी	110
129.	पं० लेखराम की महर्षि से भेंट	110
130.	जन्मदात्री मातृशक्ति वन्दनीया है	111
131.	भेदभाव उचित नहीं	111
132.	देश-सेवा का चिन्तन	112
133.	महर्षि की उच्च योगसाधना	113
134.	लौकिक प्रलोभन का कोई मूल्य नहीं	113
135.	परोपकारिणी सभा का गठन	114
136.	महर्षि दयानन्द—एक प्रबुद्ध लेखक	114
137.	सत्य कहने से नहीं चूकता	115
138.	महर्षि के विरुद्ध विषपान का षड्यन्त्र	117
139.	ऋषि जीवन की अन्तिम वेला के अन्तिम क्षण	119
140.	ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो	120
	विवरणिका	121
	महर्षि द्वारा लिखित ग्रन्थ—प्रकाशित व अप्रकाशित सूची	124

कालजयी सन्त

महर्षि दयानन्द सरस्वती

अब वह अलकनन्दा (गंगा) नदी के किनारे पर था। उसने तय कर लिया था कि जब तक वह किसी विद्वान् सिद्ध-योगी को नहीं ढूंढ़ लेगा तब तक विराम नहीं लेगा। वह सच्चे शिव को प्राप्त कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त कर लेना चाहता था। उसने पर्वत की उपत्यकाओं में स्वयं को ढकेल दिया। रास्ता आसान नहीं था। सामने बीहड़ वन और भयंकर शीत का मौसम। तन पर अपर्याप्त वस्त्र और नंगे पैर, परन्तु धुन का धनी वह युवा साधु इन सब की उपेक्षा कर अलकनन्दा नदी के स्रोत की ओर बढ़ता चला गया। पर्वत, टीले, जंगल सब श्वेत हिम-खण्डों से अटे पड़े थे, परन्तु उसकी गति धीमी न हुई। कभी-कभी सूर्य की किरणें वृक्षों के घने झुरमुटों से झाँक समय का आभास करा देतीं। चलते-चलते दिन का तीसरा पहर आरम्भ हो गया, परन्तु कहीं दूर तक भी किसी बस्ती के होने की सम्भावना उसे नहीं लगी। तीसरे पहर के ढलते-ढलते भूख और प्यास दोनों ही जागृत हो गईं, उन्हें शान्त करने का उसके पास कोई साधन नहीं था। मन की सन्तुष्टि के लिए उसने एक छोटा हिमखण्ड उठाया और मुँह में डाल लिया, परन्तु ऐसा करने से उसकी न भूख शान्त हुई और न प्यास, उलटे शरीर में शीत और बढ़ गया, फिर भी उसने विश्राम करने की नहीं सोची। साँझ होते-होते वह अलकनन्दा नदी के उद्गम स्थल के समीप पहुँच गया। आगे मार्ग के चिह्न लुप्त हो गए थे। सामने ऊँची पहाड़ियाँ थीं और घने जंगल।

अब वह थककर चूर हो गया था। कंपा देने वाली ठण्ड उसके पोर-पोर में समा गई थी। कुछ देर ठहरकर विश्राम कर लेने का कोई स्थान उसे कहीं भी दिखाई नहीं दिया। उसने निर्णय किया कि अलकनन्दा को पार कर आगे का मार्ग ढूंढने का प्रयास करूं और वह तुरन्त उसकी बर्फीली धाराओं में उतर गया। नदी में हिम के छोटे-बड़े, नुकीले हिम-खण्डों की चोट से पैर घायल हो गए थे। अतिशीत के कारण पैर सुन्न हो गए। उसे लगा कि अब वह सँभल नहीं पाएगा। फिर ऐसा सोचा कि यदि मझधार में गिर गया तो फिर कभी न उठ पाएगा, उसने हिम्मत छूटने नहीं दी और बढ़ता ही गया। कुछ देर के बाद ही वह नदी के दूसरे किनारे पर था। अब कदम आगे बढ़ने से जवाब दे गए। वह वहीं बैठ गया। शरीर से कपड़े उतारे और उन्हें सुन्न हो गए पैरों पर लपेट लिया। ऐसा करने से कुछ समय बाद उसे कुछ राहत महसूस हुई। इस समय तक धीरे-धीरे धरती पर अँधेरा उतर आया था। साधु ने अपने चारों ओर दृष्टि घुमाई। किसी तरफ भी रात बिताने के लिए कोई आश्रय दिखाई नहीं दिया। वह उठा और अलकनन्दा के किनारे से वापस हो लिया। रात के लगभग आठ बजे वह बदरीनारायण पहुँच गया। वहाँ उसने प्रसिद्ध विद्वान् महन्त रावल जी से वेदों और दर्शनों पर गहन चर्चा की। यह जुझारू व्यक्तित्व व सत्यान्वेषी कोई और नहीं, लोक में प्रसिद्ध महर्षि दयानन्द सरस्वती नाम का साधु ही था।

1. जन्म-काल, स्थान व कुल-परिचय

इस सत्य के अन्वेषक परम योगी सन्त को जन्म देने का श्रेय मोरवी राज्य (गुजरात) के टंकारा ग्राम को है। वह सौभाग्यशाली दिन था शनिवार, फाल्गुन बदी दशमी, कृष्ण पक्ष विक्रमी संवत् 1881 (12 फरवरी सन् 1825)। जब कर्षन जी तिवारी ने अपने प्रथम बेटे का नाम 'मूलजी' रखा। पिता कर्षन जी तिवारी औदीच्य ब्राह्मण थे और शंकर जी के अनन्य भक्त भी, इसलिए पिता बेटे को मूलशंकर कहकर पुकारते। घर के कुछ लोग मूलशंकर को प्यार से दयाल जी भी कहते थे।

कर्षन जी तिवारी का परिवार सम्पन्न भी था और सुसभ्य भी। घर में भूमिहारी थी। वे लेन-देन का काम भी करते थे। सरकार में सम्मान था, इसलिए उन्हें सरकार की ओर से जमींदारी प्राप्त थी। यह पद तहसीलदारी के बराबर होता था।

कर्षन जी पक्के शिव-भक्त थे। वे बेटे को भी शैवमत का अनुयायी बनाना चाहते थे। मिट्टी की शिव-पिण्डी बनाकर उसकी उपासना करने का आग्रह करते। कथा, व्रतोपवास, शिवोत्सव आदि धार्मिक कृत्यों में सदैव मूलशंकर को अपने साथ रखते। उन्होंने अपनी आस्था के अनुरूप उसकी शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया। चौदह वर्ष की अल्पायु में ही मूलशंकर ने यजुर्वेद-संहिता को कण्ठस्थ कर लिया था। रूपावली आदि व्याकरण के छोटे ग्रन्थ पिता ने स्वयं ही बेटे को पढ़ा दिये।

2. आत्मबोध की किरण

इस वर्ष शिवरात्रि का व्रत आया तो पिता ने यह कठोर व्रत रखने का बेटे को आदेश दिया। बेटा ऐसा करने के लिए उद्यत नहीं था। माता भी देर रात तक बेटे के भूखा रहने के पक्ष में नहीं थी, परन्तु शिवानुयायी पिता ने किसी की एक नहीं मानी। उन्होंने बेटे को इस व्रत का महत्त्व समझाया और कहा कि इस व्रत को निष्ठापूर्वक रखने से स्वर्गानन्द की प्राप्ति होती है। सम्पूर्ण रात्रि जागरण कर जो व्यक्ति शिव की आराधना करता है, उसे परम सुख की अनुभूति होती है। इस पर बेटा तैयार हो गया और उसने विधिपूर्वक व्रतोपवास की तैयारी कर ली। पिता प्रसन्न हुए। इस समय उनका 14वां वर्ष प्रारम्भ हो चुका था।

फाल्गुन बदी चतुर्दशी, संवत् 1894 (22 फरवरी सन् 1838) की रात्रि आ उपस्थित हुई। बस्ती के सभी शैव अपने बच्चों के साथ शिवाराधना के लिए मन्दिर की ओर प्रस्थान करने लगे। मूलशंकर भी पिता के साथ मन्दिर चला गया। पिता ने उसे पहले ही समझा दिया था कि जो भक्त पूरी रात जागरण करके शिवजी की आराधना करता है, उसे ही सुफल की प्राप्ति होती है। मूलशंकर ने निश्चय कर लिया कि वह सारी रात जागकर

शिव की विधिवत् आराधना करेगा, परन्तु उस समय उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब रात्रि का तीसरा पहर आरम्भ होते ही लगभग सभी आराधक मन्दिर से बाहर जाकर निद्रा की गोद में समाते चले गए। उसके पिता भी वहीं लुढ़क गए और खर्राटे भरने लगे। पर धुन का धनी मूलशंकर शीतल जल की सहायता से जागता रहा और विधिवत् शिवाराधना में लगा रहा। सभी भक्त गहरी नींद में सो गए थे। अवसर पाते ही चूहे अपने बिलों से निकल आए और शिव-पिण्डी पर चढ़े प्रसाद का भोग लगाने लगे। यह सब देखकर पत्थर-पूजा से मूलशंकर का मोह भंग हो गया। उसे निश्चय हो गया कि यह वह शंकर नहीं है, जिसकी कथा उसे सुनाई गई है कि वह तो चेतन है, डमरू बजाता है, बैल पर चढ़कर यात्रा करता है, शत्रुओं के संहार के लिए त्रिशूल रखता है, परन्तु यह शिव तो चूहों को अपने ऊपर चढ़ने से रोक पाने में भी असमर्थ है। ऐसा विचार आते ही

उसने अपने पिता को जगा दिया और एक सीधा-सा प्रश्न किया—"पिता जी, यह कथा वाला ही शिव है या कोई दूसरा?"

पिता को उसके इस प्रश्न पर क्रोध आया। वे उसके इस प्रश्न का उत्तर न दे सके। उलटे उसी से प्रश्न कर दिया—"तू ऐसा क्यों पूछ रहा है?"

मूलशंकर घबराया नहीं। उसने पिता के इस प्रश्न का तुरन्त उत्तर दिया—"पिता जी, मैं यह प्रश्न आप से इसलिए पूछ रहा हूँ कि जिस शिव जी की कथा आपने मुझे सुनाई है, वह मनुष्यों के समान चेतन है, परन्तु यह शिव जो मन्दिर में है, वह अपने ऊपर चढ़ रहे चूहों को भी नहीं रोक पा रहा। आखिर! चेतन शिव अपने ऊपर इन तुच्छ चूहों को क्यों चढ़ने देगा?"

मूलशंकर की इस जिज्ञासा से कर्षन जी की सारी नींद जाती रही। अब उन्होंने बड़े प्यार से उसे समझाना आरम्भ किया—"बेटे, महादेव जी कैलाश पर्वत पर रहते हैं। कलियुग में उनके साक्षात् दर्शन नहीं होते, इसलिए उनकी मूर्ति बनाकर आराधना करने से कैलाशवासी शंकर प्रसन्न हो जाते हैं।" पिता के इस उत्तर से मूलशंकर की जिज्ञासा शान्त न हुई। उसे निश्चय हो गया कि पिता जी जिस महादेव की कथा सुनाते हैं; मन्दिर में वह महादेव नहीं है। अब मन्दिर में और ठहरना उसे अर्थपूर्ण नहीं लगा। उसकी आँखों में नींद भी अपना प्रभाव जमाने लगी थी। भूख सता रही थी, अत: एक पल भी वहाँ और ठहरना उसके लिए कठिन हो गया। उसने अपने पिता से घर जाने की आज्ञा माँगी। पिता मना नहीं कर पाए। एक सिपाही साथ कर दिया, परन्तु भोजन करने की मनाही कर दी।

मूलशंकर ने घर जाते ही माता से लेकर भोजन कर लिया और सो गए। पिता जब प्रात:काल मन्दिर से घर लौटे तो यह जानकर बहुत नाराज हुए और उससे बोले—"तूने बिना महादेव की उपासना के भोजन क्यों कर लिया?"

मूलशंकर ने विचारा और कहा—"यह कथा वाला महादेव नहीं है, इसलिए मैं इसकी उपासना नहीं करूँगा।"

मन्दिर के महादेव से मूलशंकर की आस्था उठ गई थी। पिता का मन रखने के लिए उसने पिता से कहा कि पढ़ने के कारण मुझे इतना अवकाश नहीं मिलता कि मैं पूजा-पाठ कर सकूँ। मूलशंकर के चाचा और माता जी ने भी कर्षन जी को यही समझाया कि बेटे को निश्चिन्त

होकर पढ़ने दिया जाना चाहिए, इस पर तब पिता मान गए और मूलशंकर ने निघण्टु, निरुक्त तथा पूर्वमीमांसा आदि ग्रन्थों के पढ़ने में अपना मन लगा दिया।

3. वैराग्य का उदय

मूलशंकर अभी सोलह वर्ष की अवस्था को प्राप्त हुए थे कि घर में एक दु:खद घटना घटी। छोटी बहन, जो उस समय चौदह वर्ष की थी, अचानक बीमार हो गई। उसे हैजा हो गया था। वैद्यों से उपचार कराया गया, परन्तु बहन बच न सकी। चार घण्टे तक बीमारी से जूझने के बाद वह मृत्यु को प्राप्त हो गई। घर में रुदन मच गया। अकेला मूलशंकर ही

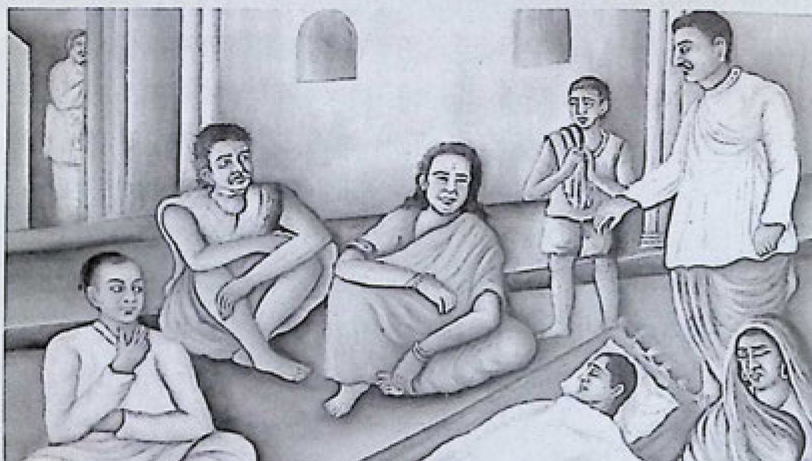

ऐसा था जिसकी आँखों में एक भी आँसू नहीं था। वह एक ओर खड़ा गहरे चिन्तन में खो गया था। क्या संसार के सभी जीव इसी प्रकार मृत्यु को प्राप्त होंगे और मैं भी एक दिन इसी प्रकार मृत्यु के चंगुल में जा फंसूँगा! इस विचार ने उसके मस्तिष्क को झकझोर कर रख दिया। उसे गहरा आघात लगा। उसका मन मृत्यु से बचने का उपाय ढूंढने में गहरे विचार में डूब गया। इस घटना से मूलशंकर का प्रसुप्त वैराग्य जाग उठा।

घर के कार्यों में अब उसका मन नहीं रमता था। वह जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूटने के उपाय सोचने लगा। उसने निश्चय कर लिया कि अब वह मोक्ष का मार्ग ढूंढ़कर ही दम लेगा और उसने सामान्य स्थिति बनाकर पढ़ने-लिखने में पूर्ववत् अपने मन को लगा दिया।

दैवयोग से तीन वर्ष पश्चात् [मूलशंकर की 19 वर्ष की अवस्था होने पर] एक और दु:खद घटना उनके परिवार में हो गई। चाचा, जो मूलशंकर को हृदय से स्नेह करते थे, बीमार हो गए। अनेक प्रयासों के पश्चात् भी उन्हें नहीं बचाया जा सका। उस समय भी मूलशंकर अपने चाचा के समीप था। इस दृश्य ने मूलशंकर के हृदय में जगी वैराग्य की अग्नि पर घृत का काम किया। उसे दृढ़ निश्चय हो गया कि संसार असार है। घर के प्रति अब उसका कोई आकर्षण नहीं रह गया था। वह घर के बन्धनों से छूटने के उपाय सोचने लगा। अपने इस विचार की चर्चा वह अपने मित्रों से कर बैठा।

4. वैवाहिक बन्धन की तैयारी

परिणामस्वरूप उसका यह विचार माता-पिता तक पहुँच गया। वे सतर्क हो गए। घर में रखने के लिए विवाह के बन्धन से अच्छा और कोई उपाय उन्हें नहीं सूझा। इस कार्य में उन्होंने विलम्ब नहीं किया। उसके योग्य कन्या की तलाश कर ली गई। बीसवें वर्ष में मूलशंकर का विवाह कर देने का निश्चय हो गया। उसने यह समाचार सुना तो उसके पैरों तले की जमीन खिसक गई। वह चिन्तित हो उठा क्योंकि गृहस्थ के बन्धन में वह बंधना नहीं चाहता था, अत: उपाय विचार कर उसने पिता से कहा—''मैं काशी जाकर वैद्यक, व्याकरण और ज्योतिष आदि ग्रन्थ पढ़ना चाहता हूँ। शिक्षित होकर विवाह करना ठीक होगा।''

उसके इस विचार से परिवार का कोई भी सदस्य सहमत नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि पढ़ने के लिए हम तुम्हें कहीं नहीं भेजेंगे और ज्यादा पढ़-लिखकर तुम्हें क्या करना है? घर में तुम्हारे लिए बहुत काम हैं। यह सुनकर मूलशंकर ने अब घर में ठहरना उचित नहीं समझा, अत: उसने

अपने ग्राम से तीन कोस दूर अपनी ही जमींदारी में रह रहे एक विद्वान् पण्डित से पढ़ने की आज्ञा पिता से प्राप्त कर ली और वह उसी गाँव में रहने लगा। वैराग्य का विचार दृढ़ होता जा रहा था। इस कारण उस गाँव के निवासियों के सामने भी उसने अपनी इच्छा प्रकट कर दी, इससे उसका यह विचार उसके परिवारजनों तक पहुँच गया और उन्होंने तुरन्त मूलशंकर को वापस बुला लिया। इस समय उनकी अवस्था 21 वर्ष को पार कर गई थी तथा विवाह की तैयारियाँ आरम्भ कर दीं। वस्त्राभूषणों की खरीदारी आरम्भ हुई। घर को सजाया जाने लगा। प्रसन्नता के मारे माता के पैर धरती पर न पड़ते थे। पिता अति व्यस्त थे। दौड़-दौड़ कर सारी व्यवस्था देख रहे थे। पूरा टंकारा गाँव ही इस विवाहोत्सव को देखने के लिए उत्साही था, परन्तु इधर मूलशंकर के मन में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ। वह घर-गृहस्थी के बन्धन से सदा के लिए छूटना चाहता था। उसके विचार में ऐसा किए बिना योग-सिद्धि सम्भव नहीं थी और योगसिद्धि के बिना मोक्ष का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता था, जिसे प्राप्त करना उसने तय कर लिया था। वह मृत्यु पर विजय प्राप्त करना चाहता था।

5. गृह-त्याग

मूलशंकर ने इक्कीसवाँ वर्ष पार कर लिया था। संवत् था 1903 (सन् 1846 ई०)। इनके मन को चैन नहीं था। इस समय इनकी अवस्था 21 वर्ष पार हो चुकी थी। इन्होंने निर्णय कर लिया कि आज रात्रि इस घर और ग्राम को सदा के लिए त्याग देगा और योग-साधना में अपने मन को लगा देगा।

रात्रि का पहला प्रहर बीत रहा था। परिवार-जन उत्सव के कार्यों से थककर गहरी नींद में चले गए थे। वैरागी मूलशंकर उठ खड़ा हुआ और दबे पाँव पिता के समृद्ध घर को छोड़कर निकल गया, कभी न लौट आने के लिए। अनजान रास्ता और सन्नाटे से भरी अँधेरी रात, परन्तु मूलशंकर ने फिर मुड़कर नहीं देखा। टंकारा से चार कोस दूर किसी ग्राम में उसने रात बिताई। मुँहअँधेरे उठा और फिर चल दिया। मुख्य मार्ग से चलना

खतरे से खाली नहीं था, इसलिए ऊबड़-खाबड़, टेढ़े-मेढ़े रास्तों से चलना उसे सुरक्षित जान पड़ा। उस दिन सन्ध्या होने तक अनवरत वह चलता ही गया। लगभग पन्द्रह कोस की यात्रा कर किसी गाँव से बाहर बने हनुमान्-मन्दिर में उसने रात में विश्राम किया।

प्रात: मूलशंकर को घर में न पाकर गृहजन चिन्तित हो उठे। पहले उसे गाँव में तलाशा गया, जब वह नहीं मिला तो घुड़सवार और पैदल सैनिकों की टुकड़ियाँ बनाई गईं। उन्हें वहाँ-वहाँ जाने का आदेश दिया गया जहाँ-जहाँ मूलशंकर के मिलने की सम्भावना हो सकती थी, परन्तु कोई परिणाम न निकला। आखिर सभी निराश हो टंकारा लौट आए।

मूलशंकर घर से चला तो उसके हाथ में अँगूठियाँ थीं और कुछ रुपये भी। रास्ते में उसे कुछ तथाकथित साधु मिले। उनसे उसकी वार्ता

हुई तो उन्होंने उसे अपने जाल में फंसा लिया। उन्होंने कहा—"यूँ वैरागी नहीं हुआ जाता। तुम अभी मोह में फंसे हो। वैरागी को ऐसे वस्त्राभूषण शोभा नहीं देते।" तब मूलशंकर ने अपनी सोने की अँगूठियाँ और कुछ रुपये उनको भेंट कर दिए और आगे की राह ली।

6. मूलशंकर से शुद्धचैतन्य

चलते-चलते उसे जानकारी मिली कि सायला स्थान (अहमदाबाद-राजकोट मार्ग पर, गुजरात) पर लाला भगत नाम का एक श्रेष्ठ पुरुष रहता है, उसके समीप साधु-सन्त आकर ठहरते रहते हैं। मूलशंकर सायला पहुँचा तो वहाँ एक ब्रह्मचारी से उसकी भेंट हो गई। ब्रह्मचारी ने उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाने का परामर्श दिया। मूलशंकर ने उस ब्रह्मचारी का परामर्श मान नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेना स्वीकार कर लिया। सन् 1846 ई० में ब्रह्मचारी से दीक्षा ले मूलशंकर 'शुद्धचैतन्य' हो गया और गेरुए रेशमी वस्त्र धारण कर एक तूम्बा ग्रहण कर लिया। अब शुद्धचैतन्य अभीष्ट योग-साधना में लग गया।

7. योगियों की खोज में

कुछ समय सायला में व्यतीत करने के पश्चात् शुद्धचैतन्य अन्य किसी विद्वान् योगी की तलाश में आगे निकल पड़ा। यात्रा के मध्य उसे जानकारी मिली कि अहमदाबाद के समीप कोटकाँगड़ा नाम के छोटे से नगर में वैरागियों का डेरा है। शुद्धचैतन्य वहाँ पहुँच गया। वैरागियों ने उसे रेशमी वस्त्रों में देखकर उसका उपहास किया। इस पर शुद्धचैतन्य ने तुरन्त रेशमी वस्त्र उतार फेंके और अपने पास बचे मात्र तीन रुपयों से सूत की साधारण धोतियाँ खरीदकर धारण कर लीं। इस स्थान पर वह तीन मास ठहरा, परन्तु वैरागियों के डेरे से अलग ही रहा। इसी स्थान पर उसे कार्तिक में होने वाले सिद्धपुर के मेले की जानकारी मिली। उस मेले में साधु-सन्त, योगी-महात्मा भी एकत्र होते थे, इसलिए शुद्धचैतन्य ने सिद्धपुर (गुजरात) की राह पकड़ ली। मार्ग में उसे अपने कुल का परिचित एक वैरागी साधु मिला। मूलशंकर को इस वेश में देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वैरागी ने प्रश्नवाचक दृष्टि से शुद्धचैतन्य को निहारा तो उसने (शुद्धचैतन्य ने) भावावेश में अब तक की सम्पूर्ण घटना उसे कह सुनाई और सिद्धपुर मेले में जाने का अपना विचार भी बतला दिया। साथ ही, यह भी जता दिया कि अब वह कभी घर नहीं लौटेगा। वह योग-साधना के द्वारा आवागमन

के झंझट से मुक्त होना चाहता है। इस अल्प भेंट के पश्चात् वैरागी अपनी राह लगा और शुद्धचैतन्य ने सिद्धपुर की ओर प्रस्थान कर दिया।

सिद्धपुर पहुँचकर शुद्धचैतन्य ने नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में अपना आसन जमाया। इसके पूर्व वहाँ कुछ दण्डीस्वामी और ब्रह्मचारी भी विराज रहे थे। शुद्धचैतन्य उनकी संगति करते और मेले में डेरा डाले सभी सन्तों के समीप श्रद्धावनत होकर विनम्र प्रार्थना करते हुए उनसे अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करते।

8. सिद्धपुर मेले में पिता से अन्तिम भेंट

राह में मिले परिचित वैरागी ने अपने स्थान पर पहुँच कर कर्षन जी को पत्र लिख दिया। पत्र में उन्हें अवगत कराया कि आपका पुत्र घर त्याग कर चला आया है। उसने गेरुए वस्त्र धारण कर लिये हैं और अब सन्तों

के दर्शन करने सिद्धपुर (अजमेर-अहमदाबाद रेलमार्ग पर महसाणा के पास) मेले की ओर जा रहा है। पत्र मिलते ही कर्षन जी तिवारी ने कुछ सिपाही साथ लिये और सिद्धपुर की ओर अविलम्ब प्रस्थान कर दिया। सिद्धपुर के मेले में जाकर उन्होंने साधुओं का हर डेरा ढूंढा, मन्दिर देखे।

अन्त में वे नीलकण्ठ महादेव के मन्दिर में जा पहुँचे जहाँ सन्तों के बीच बैठा शुद्धचैतन्य ज्ञान की चर्चा सुन रहा था। बेटे को इस वेश में देखकर कर्षन जी आपे से बाहर हो गए। बोले—''कुलकलंकी ! तू माता की हत्या करना चाहता है।'' पिता को देखकर शुद्धचैतन्य उठ खड़ा हुआ और उनके चरण छूते हुए बोला—''किसी के बहकावे में आकर मैंने घर त्याग दिया था। अब मैं आपके साथ चलूँगा।'' परन्तु इससे कर्षन जी का क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने उसके गेरुए वस्त्र फाड़ दिए और तूम्बा तोड़कर फेंक दिया। उसे श्वेत वस्त्र पहनाए और सिपाहियों के पहरे में बैठा दिया। इसी प्रकार दो दिवस व्यतीत हो गए। शुद्धचैतन्य की आँखों में नींद नहीं थी। वह उनके बन्धन से मुक्त हो अपने लक्ष्य की ओर दौड़ जाना चाहता था, परन्तु कड़ी देखरेख में घिरा था। तीसरी रात का तीसरा पहर आरम्भ हुआ तो प्रहरी ऊँघने लगे। धीरे-धीरे वे प्रगाढ़ निद्रा में पहुँच गये। शुद्धचैतन्य हाथ आए इस अवसर को गँवाना नहीं चाहता था। उसने पानी से भरा लोटा हाथ में लिया और दबे पाँव वहाँ से खिसक गया। अगर कोई जाग गया तो लघुशंका जाने का बहाना उसने सोच लिया था, परन्तु कोई नहीं जागा।

सिपाहियों के पहरे से निकलते ही शुद्धचैतन्य तीव्र गति से आगे बढ़ा। अँधेरे के समय ही वह किसी सुरक्षित स्थान तक पहुँच जाना चाहता था। वह लगभग आधा कोस चला होगा कि उसे एक बगीचे में मन्दिर दिखाई दिया। मन्दिर के साथ ही विशाल वटवृक्ष था। उसी वृक्ष के झुरमुट में मन्दिर के शिखर पर छिपकर बैठ गया। कुछ ही समय बीता होगा कि नीचे किसी के पैरों की आहट हुई। सिपाही उसे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मन्दिर में पहुँच गए थे। एक सिपाही किसी के वहाँ आने की बात माली से पूछ रहा था। शुद्धचैतन्य सतर्क हो गया। उसने हिलना-डुलना बिल्कुल बन्द कर दिया और उनकी बातें ध्यान से सुनता रहा। सिपाहियों को जब यह निश्चय हो गया कि यहाँ और कोई नहीं है तो वे आगे चले गए। शुद्धचैतन्य ने चैन की साँस ली। वह भूखा ही पूरे दिन उस मन्दिर के शिखर पर चुपचाप बैठा रहा। जलभरे लोटे के अतिरिक्त उस समय

उसके पास और कुछ नहीं था।

धीरे-धीरे अन्धकार की छाया मन्दिर में फैलने लगी। शुद्धचैतन्य उस वृक्ष के सहारे धीरे से नीचे उतर आया और कच्चे रास्ते से चलकर दो कोस दूर एक ग्राम में रात व्यतीत की। सिद्धपुर में पिता से अन्तिम भेंट कर वह सदा के लिए उनसे विदा हो गया था।

सवेरा होते ही शुद्धचैतन्य ने फिर अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। अहमदाबाद होते हुए वह बड़ौदा में जाकर चैतन्य मठ में ठहरा। मठ में उसकी भेंट वेदान्तियों से हुई। ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी वेदान्त के अच्छे विद्वान् थे। वेदान्त पर ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य की ब्रह्मानन्द जी से खुलकर चर्चा हुई। परिणाम यह हुआ कि शुद्धचैतन्य पर वेदान्त का रंग चढ़ गया।

9. संन्यास की दीक्षा चाणोद में

शुद्धचैतन्य को लगा कि भोजनादि बनाने में काफी समय बीत जाता है। इस कारण विद्याध्ययन में बाधा पड़ती है। यदि संन्यास की दीक्षा ले ली जाए तो इस झंझट से बचा जा सकता है। इसी उद्देश्य से उसने नर्मदा नदी के किनारे घूमते हुए डेढ़ वर्ष की अवधि व्यतीत कर दी। इस समय पच्चीसवें वर्ष में उसने प्रवेश कर लिया था। उन्हीं दिनों चाणोद (नर्मदा नदी के किनारे, बड़ौदा से 60 मील दूर, गुजरात) से लगभग कोस भर दूर जंगल में बने ठिकाने पर एक ब्रह्मचारी के साथ दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती आ विराजे। शुद्धचैतन्य ने सुना कि वे अच्छे विद्वान् साधु हैं। वह उसी वेदान्ती पण्डित के साथ स्वामी पूर्णानन्द जी की सेवा में उपस्थित हुआ। उनसे शास्त्र-चर्चा की और सन्तुष्ट हुआ तथा उन्हीं से संन्यास लेने का निर्णय कर शुद्धचैतन्य ने संन्यास के लिए निवेदन किया। पहले तो उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि इन्हें किसी गुजराती साधु से संन्यास की दीक्षा लेनी चाहिए, परन्तु अनुनय-विनय करने पर उन्होंने सहमति प्रदान कर दी। विधिवत् उसी ठिकाने पर शुद्धचैतन्य को दण्डी स्वामी पूर्णानन्द जी ने संन्यास की दीक्षा देकर **'दयानन्द सरस्वती'** नाम दिया। वे प्रसन्न थे। अब दयानन्द सरस्वती भोजनादि बनाने के झंझट से मुक्त हो

विद्याध्ययन में लग गए। स्वामी पूर्णानन्द, स्वामी ओमानन्द के शिष्य थे। कालान्तर में महर्षि दयानन्द के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी बने, जो इन्हीं पूर्णानन्द जी के शिष्य थे।

10. योग-साधना एवं स्वाध्याय

स्वामी पूर्णानन्द जी शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा देकर द्वारका की ओर चले गए। संन्यासी दयानन्द कुछ समय और चाणोद में ही ठहर कर योग-साधना सीखने और शास्त्राध्ययन में लगे रहे। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाते थे।

स्वामी दयानन्द ज्यों-ज्यों योग-साधना और शास्त्राध्ययन करते त्यों-त्यों उनकी ज्ञानार्जन की प्यास और बढ़ती जाती। वे किसी भी उस स्थान पर जाने से नहीं चूकते थे जहाँ किसी विद्वान् पण्डित और साधु-संन्यासी के होने की उन्हें जानकारी मिलती।

11. हरिद्वार कुम्भ के मेले में

उन्हीं दिनों हरिद्वार में कुम्भ के मेले का अवसर आ उपस्थित हुआ, इस पर स्वामी दयानन्द ने हरिद्वार की ओर प्रस्थान कर दिया। हरिद्वार में अनेकानेक साधु-सन्तों के साथ योग और अन्य शास्त्रों के सम्बन्ध में चर्चा की। जब तक कुम्भ का मेला चलता रहा तब तक वे चण्डी के पहाड़ी जंगल में जाकर योगाभ्यास करते रहे।

12. सन् 1857 के आस-पास

सन् 1857 में स्वातन्त्र्य आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। उस परिस्थिति में स्वामी दयानन्द कैसे शान्त रह सकते थे, अत: क्रान्ति की पृष्ठभूमि की तैयारी में तत्परता से लगे सन्तों के साथ वे भी क्रान्ति की योजना में संलग्न रहे और सभाओं को पूरे वर्ष सम्बोधित करते रहे। इन सभाओं में पहली प्रमुख सभा सन् 1855 के आरम्भ में हरिद्वार में हुई। इस सभा में भारत के अन्तिम मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफर के पुत्र फिरोजशाह, अजीमुल्ला खाँ, रंगू बापू आदि विशिष्ट जन सम्मिलित हुए। डेढ़ हजार के लगभग

लोग इस सभा में उपस्थित थे। दूसरी सभा गढ़गंगा के मेले के अवसर पर गढ़ में गंगा के किनारे सम्पन्न हुई। लगभग ढाई हजार की उपस्थिति इस सभा में थी। तीसरी महत्त्वपूर्ण सभा अक्तूबर के अन्त में सन् 1855 में फिर हरिद्वार में हुई। इस सभा में 565 साधुओं ने भाग लिया। इनमें 195 मुसलमान सूफी-सन्त थे। तीसरी सभा की योजना स्वामी ओमानन्द और स्वामी पूर्णानन्द ने तैयार की थी, जिसकी व्यवस्था स्वामी विरजानन्द दण्डी ने की। स्वामी ओमानन्द जी स्वामी दयानन्द के परदादा गुरु थे और स्वामी पूर्णानन्द दादा गुरु। स्वामी पूर्णानन्द ने ही स्वामी दयानन्द को दण्डी स्वामी विरजानन्द के पास जाने की प्रेरणा दी थी। स्वामी ओमानन्द जी की आयु सन् 1857 में 160 वर्ष थी और स्वामी पूर्णानन्द जी की आयु 110 वर्ष। स्वामी विरजानन्द जी की आयु 79 वर्ष थी जबकि स्वामी दयानन्द की आयु 33 वर्ष थी।

13. ज्ञानार्जन के लिए कठिन पर्वत-यात्राएँ

स्वामी दयानन्द के मन में निरन्तर एक जिज्ञासा बनी रहती थी कि ऐसे किसी विद्वान् साधु का सामीप्य प्राप्त हो, जो उनकी समस्त शंकाओं का समाधान कर सके। जिससे सन्तुष्ट हो वे ज्ञान की गंगा में डुबकियाँ लगा सकें। इसी उद्देश्य से वे हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों की ओर चल पड़े। बीस दिन तक निरन्तर इन शिखरों पर भटकने के बाद वे निराश हो नीचे लौट आए, लेकिन उनका जिज्ञासु मन उन्हें कहीं भी ठहरने नहीं दे रहा था। वे फिर चल पड़े।

इस बार तुंगनाथ पर्वत की ऊँचाई को नापने की उनकी इच्छा हुई। कुछ ही दूर चलने के बाद उन्होंने स्वयं को एक जनशून्य सघन कण्टकाकीर्ण पथरीले प्रदेश में घिरा पाया। उन्होंने अपने चारों ओर देखा। सभी पथ विलुप्त हो गए थे। ऊपर दृष्टि गई तो चढ़ने का कोई उपाय न सूझा। चढ़ाई सीधी थी। पैर रखने की कोई ठौर न दिखाई दी। नीचे उतर जाने में ही भलाई समझी। नीचे दृष्टि गई तो लगा कि उतरना चढ़ने से भी कठिन है, परन्तु उतर जाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था।

बिना सहारे उतरना सम्भव न था। वृक्षों की झुकी टहनियों, लम्बी घास और जंगली लताओं के सहारे उन्होंने उतरना आरम्भ किया। घण्टों के श्रम के पश्चात् उन्होंने स्वयं को एक सूखे नाले के तट पर खड़ा पाया। यह ऐसा स्थान था जहाँ पगडण्डियाँ तक विलुप्त हो गई थीं। धीरे-धीरे साँझ हो रही थी। शीत बढ़ता जा रहा था। आग जला लेने का कोई साधन उनके पास नहीं था। रात वहाँ बिताना उनको निरापद नहीं लगा, अत: अविलम्ब वहाँ से चल दिए। आगे की राह झाड़ियों से भरी थी। नंगे पैरों को नुकीले कण्टकों व पत्थरों से होकर गुजरना पड़ा। कंटीली झाड़ियों से उलझकर वस्त्र तार-तार हो गए। पैर घायल हो गए और शरीर पर जहाँ-तहाँ खून की बूँदें निकल आईं। पर वहाँ विराम सम्भव नहीं था। ऊपर से अन्धकार ने भी अपना साम्राज्य जमा लिया था। अनुमान के सहारे चलते चले जाने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था, अत: अदम्य साहस के साथ बढ़ते रहे। परिणामस्वरूप विकट वन पार हो गया। यह तुंगनाथ पर्वत की तलहटी थी।

14. पर्वतीय दुर्गा-भक्तों से प्राण-त्राण

कुछ दूर चलने पर स्वामी जी को झोंपड़ियाँ दिखाई दीं। जिससे रात्रि-विश्राम कर लेने की सम्भावना भी जान पड़ी। वे उस बस्ती में पहुँचे तो वहाँ के निवासी भक्तों ने उनकी जी-भर सेवा की। महर्षि जी ने कुछ दिन वहीं विश्राम किया। जब चलने लगे तो उन लोगों ने विनम्रतापूर्वक कुछ दिन और वहीं ठहरने का आग्रह किया। उनकी सेवा-भावना और श्रद्धा-भक्ति से प्रभावित हो स्वामी जी ठहर गए। उन्हीं दिनों उनका पर्व आ गया। वे दुर्गा के भक्त थे। पर्व के दिन बस्ती से दूर दुर्गा के मन्दिर में सभी एकत्र हो भजन-कीर्तन करने लगे। स्वामी जी से भी मन्दिर में चलकर देवी-दर्शन करने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने उनसे कहा कि देवी-दर्शन में मेरी आस्था नहीं है, परन्तु वे लोग विनम्रतापूर्वक उनसे एक बार मन्दिर में जाकर उत्सव देखने का आग्रह करते रहे, इस पर स्वामी जी मना नहीं कर सके। वे मन्दिर में गए तो वहाँ यज्ञ हो रहा था। कुछ लोग

उत्सव में व्यस्त थे। प्रमुख लोगों ने स्वामी जी से एक बार मूर्ति देख लेने का आग्रह किया। स्वामी जी उनके आतिथ्य से प्रभावित थे, इसलिए चले गये। मन्दिर के द्वार पर एक मजबूत देहधारी व्यक्ति हाथ में खाँडा लिए चौकस खड़ा हुआ था। स्वामी जी मूर्ति के समीप पहुँच गए। वहीं अधेड़ आयु का पुजारी खड़ा था। साथ आए दुर्गा भक्तों ने कहा—''स्वामी जी एक बार दुर्गा जी के सम्मुख नतमस्तक हो प्रणाम अवश्य कीजिए।''

स्वामी जी ने दृढ़तापूर्वक कहा—''मैं मूर्ति-पूजक नहीं हूँ।'' इस पर पुजारी क्रोधित हो गया। उसने स्वामी जी की गर्दन को कसकर पकड़ा और मूर्ति के सामने झुकाना चाहा, पर वह उस वज्र-देह की गर्दन को हिला न सका। स्वामी जी मुड़े तो वह खड्गधारी व्यक्ति उनकी गरदन पर वार करना चाहता था कि सिंह-सी स्फूर्ति से खड्ग उसके हाथ से छीन कर मन्दिर के प्रांगण में निकल आए। वहाँ कई दुर्गा-भक्त हाथों में शस्त्र लेकर उन पर टूट पड़े। स्वामी जी तेजी से खड्ग घुमाते हुए मन्दिर की दीवार फाँद कर अन्धकार में विलीन हो गए।

15. ओखीमठ के स्वामित्व का प्रस्ताव ठुकराया

वहाँ से आकर स्वामी जी ने उस रात्रि में ओखीमठ में विश्राम किया। उस मठ के महन्त से शास्त्रचर्चा हुई। महन्त उनके आकर्षक व्यक्तित्व और विद्वत्ता से अत्यधिक प्रभावित हुआ। उस महन्त ने उन्हें अपना शिष्य हो जाने का न्योता दिया। स्वामी जी ने कहा कि ऐसा करने से मेरा क्या हितार्थ है? महन्त ने कहा—''ऐसा होने से तुम हमारे उत्तराधिकारी हो जाओगे। मठ की लाखों की सम्पत्ति का स्वामित्व तुम्हें निर्विघ्न प्राप्त हो जाएगा। सुख-सुविधा-पूर्ण जीवन बिताने का सुअवसर तुम्हें अनायास ही उपलब्ध हो रहा है।'' स्वामी जी मुस्कराए और बोले—''यह मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं है। यदि मुझे यही अभीष्ट होता तो मेरे लिए मेरे पिता का वैभव कम नहीं था। उसे ठुकरा कर चले आने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं थी।'' महन्त को दयानन्द से ऐसी आशा नहीं थी। उसका चेहरा बुझ गया। उसने कहा—''तो फिर तुम्हारा अभीष्ट क्या है?''

स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया—"ज्ञानार्जन कर योग-विद्या सीखना और जनसामान्य की सेवा कर राष्ट्रहित में लगे रहना ही मेरा उद्देश्य है। मैं मोक्ष की इच्छा रखता हूँ।"

स्वामी जी की वार्ता से महन्त सन्तुष्ट हुआ और उसने चाहा कि स्वामी जी कुछ दिनों मठ में निवास करें, परन्तु वे वहाँ नहीं ठहरे और जोशीमठ चले गए।

16. अलकनन्दा नदी की दुर्गम यात्रा

जोशीमठ में ठहर कर साधु-सन्तों से शास्त्र-चर्चा करते रहे। कुछ समय बाद ही बदरीनारायण चले गए। वहाँ भी वे अधिक समय नहीं ठहर पाए। उनके मन का संकल्प उन्हें टिकने नहीं देता था। ज्ञान-पिपासा बढ़ती ही जा रही थी। ज्ञान की प्यास बुझाने वे फिर पर्वत श्रृंखलाओं के बीच में थे। कुछ यात्रा के उपरान्त उन्होंने स्वयं को अलकनन्दा नदी के तट पर पाया। उन्हें आशा थी कि अवश्य ही इस नदी के किनारे किसी ऐसे विद्वान् योगी सन्त की संगति प्राप्त हो सकेगी, जिनके चरणों में बैठ कर वे ज्ञान-पिपासा शान्त कर सकेंगे। उन्होंने अलकनन्दा नदी के उद्गम स्थान तक पहुँचने का निश्चय कर लिया।

कठिन श्रम के बाद उन्होंने अलकनन्दा नदी का उद्गम स्थान पा लिया, परन्तु उनकी इच्छा पूरी न हुई। आगे का मार्ग अवरुद्ध था। सामने गगनचुम्बी अचल पर्वत शिखर खड़े थे। शीत का ताण्डव हो रहा था। शरीर पर अपर्याप्त वस्त्र थे। खड़ाऊँ पहन कर यात्रा सम्भव नहीं थी। सन्ध्या ने अपने आने के संकेत देने आरम्भ कर दिए थे। प्यास से कण्ठ सूख रहा था। अति शीत के कारण अलकनन्दा नदी का जल हिमखण्डों में विभक्त हो गया था। जल उसमें जितना भी था, वह इतना शीतल था कि कण्ठ से नीचे नहीं उतारा जा सकता था। भूख को शान्त करने का भी कोई साधन नहीं दिखा। उन्होंने तय किया कि अलकनन्दा को पार करें, शायद कोई बस्ती उधर दृष्टिगोचर हो, परन्तु अलकनन्दा के जल की गहराई का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था, फिर भी अन्य कोई उपाय

नहीं था। वे उसके जल में प्रवेश कर गये। पानी अधिक गहरा नहीं मिला, पर उसमें तैरते आड़े-तिरछे, नुकीले हिमखण्डों ने उनके पैरों को घायल कर दिया। अतिशीत के कारण शरीर का रक्त जम-सा गया था। अलकनन्दा की धारा के बीच पहुँचकर स्वामी जी को लगा कि अब गिरे, पर दूसरे ही क्षण उन्हें आभास हुआ कि अगर यहाँ गिर गए तो फिर कभी नहीं उठ पाएँगे। उन्होंने हिम्मत सहेजी और पूरा दम लगाकर अलकनन्दा का दूसरा किनारा पकड़ लिया। अब पैरों में खड़ा रहने का सामर्थ्य नहीं था। वे वहीं बैठ गए। अपने शरीर के सब वस्त्र उतार लिये और बर्फ से जम गए पैरों पर लपेट लिये। अँधेरा अब गहराने लगा था। उन्होंने वहाँ बैठकर कुछ देर विश्राम किया और फिर रास्ता पकड़ अलकनन्दा के किनारे-किनारे चल दिए। रात के आठ बजे वे बदरीनारायण लौट आए।

17. ग्रन्थ का परीक्षण

बदरीनारायण से रामपुर होते हुए स्वामी जी काशीपुर पहुँच गए। वहाँ से द्रोणसागर और फिर मुरादाबाद। वहाँ से गढ़मुक्तेश्वर के रास्ते गंगा के घाट पर आकर विश्राम किया। इस बीच उन्हें जो ग्रन्थ मिले उनमें एक ग्रन्थ नाड़ीचक्र के सम्बन्ध में था। उसका अध्ययन करते हुए उसके सत्य में उन्हें संशय हो गया। वे ऐसे अवसर की तलाश में थे कि इस पुस्तक के सम्बन्ध में मन में उपजा संशय दूर हो। उन्हीं दिनों एक ऐसा अवसर आ उपस्थित हुआ कि जब वे प्रयोग द्वारा नाड़ी-परीक्षा करके देख सकते थे। गंगा-तट पर भ्रमण करते समय उनकी दृष्टि गंगा में बहे चले जा रहे एक शव पर पड़ी। संशय-निवारण का अच्छा अवसर जानकर वे परीक्षण के लिए उद्यत हो गये। पुस्तकों को गंगा किनारे टिकाया और गंगा में छलांग लगा दी। शव को पकड़कर किनारे पर ले आए। नाड़ीचक्र वाली पुस्तक एक बार पुनः अच्छी तरह देखी। अपना तेजधार का चाकू निकाला। शव की चीर-फाड़ आरम्भ की। प्रथम हृदय बाहर निकाल लिया। उसकी लम्बाई-चौड़ाई को नापा। फिर ग्रन्थ में वर्णित नाभिचक्र आदि का परीक्षण किया, परन्तु ग्रन्थ में लिखे की पुष्टि न हुई। उन्होंने

तुरन्त उन ग्रन्थों को फाड़ कर फेंक दिया।

18. जिज्ञासु व निर्भीक दयानन्द का नर्मदा नदी के घोर घने जंगल में भालू से मुठभेड़

स्वामी जी अपनी यात्रा पर फिर आगे निकल पड़े। गंगा के किनारे चलते हुए वे फर्रुखाबाद पहुँच गए। संवत् 1913 (सन् 1856) में पांच महीने उन्होंने कानपुर और प्रयाग के बीच भ्रमण में बिताए। वहाँ से काशी और फिर चाण्डालगढ़। इन स्थानों पर रहकर उन्होंने निरन्तर योगाभ्यास किया। इन दिनों वे दूध पर ही आश्रित थे। वहाँ भी उन्हें कोई ऐसा विद्वान् संन्यासी न मिला जिससे उनकी जिज्ञासा शान्त हो जाती, अत: उनकी यात्रा बन्द न हुई। नर्मदा के तट पर पहुँचने के बाद उसके आदिस्रोत की ओर इस आशा से चल पड़े कि सम्भव है कहीं किसी विलक्षण सन्त के दर्शन हो सकें। रास्ता विकट था। कुछ दूरी तक पगडण्डियों के चिह्न मिले। धीरे-धीरे वे भी विलुप्त हो गए। बस्ती होने का कहीं कोई संकेत नहीं दिखता था। किधर जाना चाहिए, स्वामी जी ऐसा सोच ही रहे थे कि सामने से एक विशालकाय काला रीछ दौड़ता हुआ आता दिखाई दिया। वह कुछ दूरी पर ठहर कर पिछले पैरों पर खड़ा हो गया और जोर से चिंघाड़ा। वह उन पर वार करना ही चाहता था कि स्वामी जी ने स्फूर्ति से अपना दण्ड जैसे ही उसकी तरफ बढ़ाया, वह उनके सामने ठहर न सका, परन्तु रीछ इतनी जोर से चीखा कि उसकी आवाज सुनकर पहाड़ी लोग अपने कुत्तों सहित वहाँ आ उपस्थित हुए और स्वामी जी से बस्ती में लौट आने की प्रार्थना की, परन्तु स्वामी जी ने उन्हें विनम्रतापूर्वक लौटा दिया और अपनी राह बढ़ चले। आगे का मार्ग बेहद दुरूह था। भारी-भरकम पेड़। उनकी गहरी छाया से आच्छादित पूरा वन-प्रदेश। दिन में भी रात्रि होने का भ्रम हो रहा था। नीचे उलझी लम्बी घास और तीव्र काँटों-भरी पसरी हुई झाड़ियाँ। कहीं किसी मार्ग के चिह्न नहीं। झाड़ियाँ इतनी घनी और उलझी हुई थीं कि खड़े होकर एक कदम सरकना भी असम्भव, पर धुन का धनी यह साधु अपराजेय था। समस्याओं का समाधान पूरी

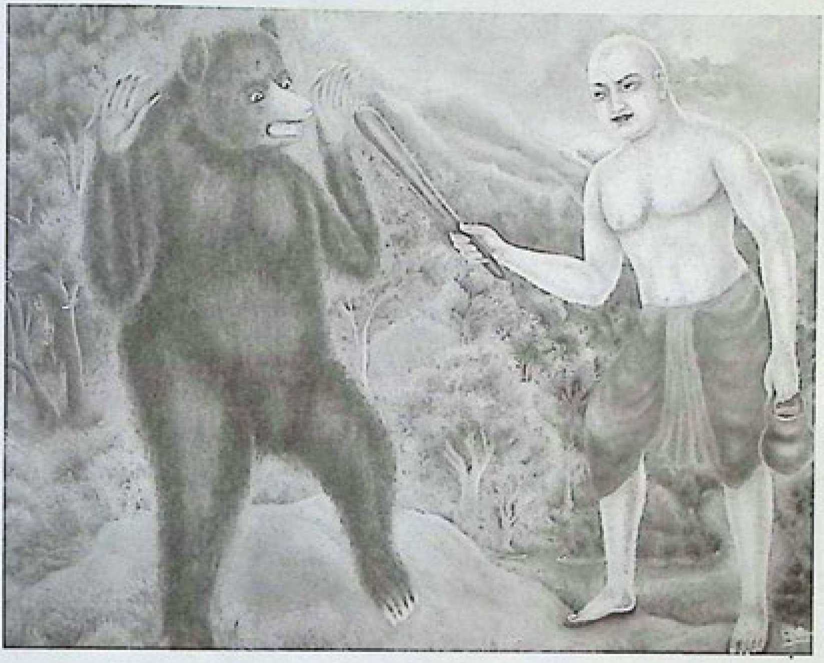

जिन्दगी करता रहा। लौटकर पीछे देखना उसकी नियति में नहीं था। उसने धरती पर लेटकर रेंगना शुरू कर दिया। वस्त्र कांटों में फंस कर फट गए। देह पर लंगोटी के अतिरिक्त कुछ न बचा। शरीर को कांटों की नोक ने उधेड़ दिया, रक्त बहने लगा, पर स्वामी जी रुके नहीं। उस घोर घने वन-प्रदेश को स्वामी जी ने पार कर सन्तोष का अनुभव किया, पर रात घिर आई थी। राह का कोई पता नहीं था। ज्यों ही कुछ आगे बढे तो उन्हें संकीर्ण पगडंडियों के चिह्नों का आभास हुआ। वे उनकी दिशा में बढ़ते चले गये। कुछ दूर चलने पर दीये टिमटिमाते दिखाई दिए। सामने ही एक छोटी-सी पहाड़ी बस्ती थी। स्वामी जी ने उस बस्ती के बाहर एक वृक्ष के नीचे रात्रि-विश्राम किया। बस्ती के लोगों ने उनके लिए दूध की व्यवस्था की और उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध भी, परन्तु स्वामी जी वहाँ ठहरे नहीं।

तीन वर्ष इसी प्रकार स्वामी जी नर्मदा के किनारे घूमते रहे।

19. गुरु के चरणों में

मथुरा में विराज रहे दण्डी स्वामी विरजानन्द जी की ख्याति उन दिनों लोक में प्रसिद्धि पा रही थी। स्वामी दयानन्द उनकी विद्वत्ता से परिचित थे। सन् 1855 में उनका सामीप्य उन्हें प्राप्त हो चुका था। उन्होंने तुरन्त मथुरा की राह पकड़ ली।

संवत् 1917 कार्तिक शुदी 2 (सन् 1860) को स्वामी दयानन्द ने मथुरा पहुँच कर व्याकरण के सूर्य दण्डी स्वामी विरजानन्द जी की कुटिया का द्वार खटखटा दिया।

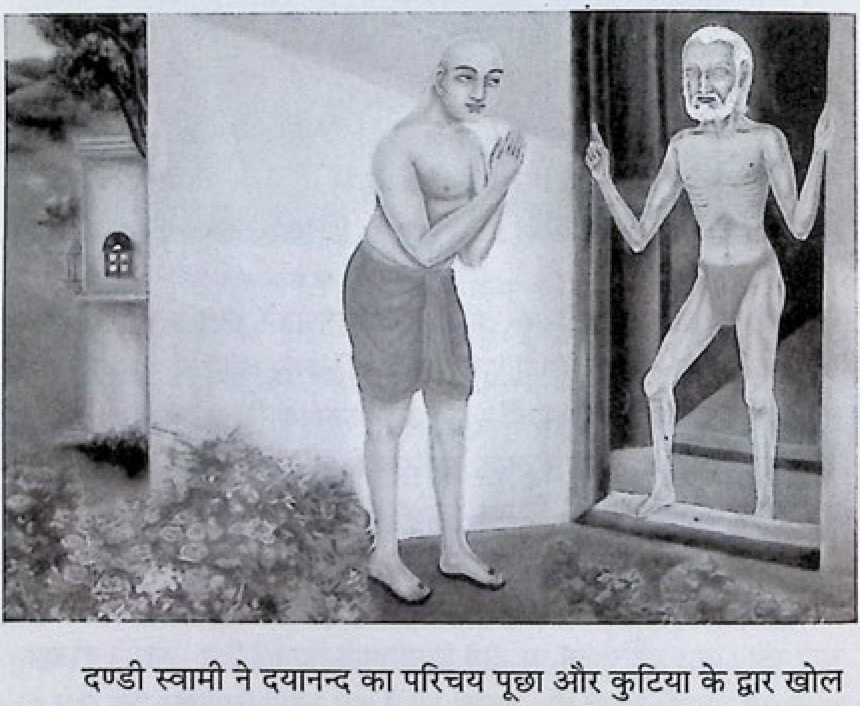

दण्डी स्वामी ने दयानन्द का परिचय पूछा और कुटिया के द्वार खोल दिए। स्वामी दयानन्द का अभीष्ट पूरा हुआ। वे गुरु के चरणों में नतमस्तक हो गए।

गुरु ने कहा—"दयानन्द तुमने अभी तक जितने भी ग्रन्थ पढ़े हैं, उनमें अधिकतर अनार्ष ग्रन्थ हैं। मैं मनुष्यकृत ग्रन्थ नहीं पढ़ाता हूँ। यदि

तुम मुझ से विद्याध्ययन करना चाहते हो तो प्रथम अनार्ष ग्रन्थों का परित्याग करना होगा।''

स्वामी दयानन्द ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर अनार्ष ग्रन्थों का त्याग करते हुए उन्हें यमुना नदी में बहा दिया।

पढ़ने के लिए स्वामी दयानन्द को महाभाष्य की आवश्यकता हुई। पैसा पास नहीं था। दण्डी स्वामी की प्रेरणा से नगरवासियों ने सहयोग किया। 31 रुपये एकत्रित कर स्वामी दयानन्द के लिए महाभाष्य की एक प्रति क्रय कर ली गई। दण्डी स्वामी इस समय जीवन के 81 वर्ष पूर्ण कर चुके थे।

पढ़ाई की व्यवस्था तो हो गई, परन्तु भोजन की व्यवस्था न हो सकी। उस वर्ष उत्तर भारत दुर्भिक्ष के चंगुल में फंसा कराह रहा था। इसका कुप्रभाव मथुरा को भी झेलना पड़ा, इसलिए लम्बे समय तक स्वामी दयानन्द को चने खाकर ही अपनी क्षुधा को शान्त करने के लिए विवश होना पड़ा।

धीरे-धीरे स्वामी दयानन्द के विनम्र स्वभाव, तेजस्वी व्यक्तित्त्व और विद्वत्ता से मथुरा निवासी परिचित होने लगे। कुछ समय के लिए दुर्गाप्रसाद क्षत्रिय के घर उनके भोजन की व्यवस्था हुई। उसके पश्चात् अमरलाल ज्योतिषी ने स्वामी दयानन्द को आदरपूर्वक अपने घर में प्रवेश कराया और उनके भोजन, पुस्तकादि का पूर्ण प्रबन्ध किया। रात्रि में अध्ययन के लिए प्रकाश की आवश्यकता थी। दीये के प्रकाश में पढ़ने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था, परन्तु दीया जलाने के लिए तेल की आवश्यकता थी। तेल की व्यवस्था लाला गोवर्धन सर्राफ ने की। उसके लिए वे चार आना प्रतिमास दिया करते थे। दूध के लिए दो रुपये प्रतिमास श्री हरदेव पत्थर वालों के यहाँ से आते थे।

निवास का प्रबन्ध पहले दिन ही हो गया था। मथुरा में विश्रामघाट के लक्ष्मीनारायण मन्दिर के नीचे प्रवेश द्वार के साथ एक छोटी-सी कोठरी उन्हें मिल गई थी। यद्यपि वे उसमें पैर पसार कर सो भी नहीं सकते थे,

फिर भी सन्तुष्ट थे।

20. गुरुसेवी दयानन्द

दण्डी स्वामी को ब्राह्ममुहूर्त में साधना करने का अभ्यास था। वे प्रात:-सायं यमुना के यथेष्ट जल से स्नान करते और यमुना का ही जल पीते थे। इस निमित्त शिष्य स्वामी दयानन्द जल के आठ-दस घड़े प्रात: और आठ-दस घड़े सायं नित्य ही कंधे पर रख कर गुरु-कुटिया में पहुँचाते। पीने के पानी के लिए उन्हें यमुना की पवित्र गहरी धाराओं में उतरना पड़ता था। इसके पश्चात् भ्रमणार्थ चले जाना, लौटने पर स्नानादि कर योगासन और प्राणायाम का अभ्यास करना और फिर सन्ध्या-उपासना में मन लगाना। यथासमय विद्याध्ययन के लिए गुरु-चरणों में उपस्थित हो जाना। इस कार्य में वे कभी भी विलम्ब नहीं करते थे। वे आदर्श गुरु के आदर्श शिष्य थे।

21. संकल्पी स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द की स्मरणशक्ति विलक्षण थी। एक-दो बार सुनी हुई बात उन्हें विस्मृत न होती थी। गुरु को भी अपने इस शिष्य की स्मरणशक्ति पर पूरा भरोसा था, इसलिए वे कोई भी पाठ स्वामी दयानन्द को दो बार नहीं पढ़ाते थे। एक बार स्वामी दयानन्द अष्टाध्यायी की प्रयोगसिद्धि अपने निवास पर जाते-जाते भूल गए। प्रयास करने पर भी उन्हें वह सिद्धि स्मरण न आ सकी। उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। वे दौड़ते हुए गुरु-चरणों में उपस्थित हुए और वह प्रयोगसिद्धि दोबारा बता देने की प्रार्थना की, परन्तु उनकी प्रार्थना स्वीकार न हुई। वे दो-तीन दिन तक इसी प्रयास में लगे रहे, पर उन्हें सफलता न मिल सकी। अन्त में गुरु विरजानन्द दण्डी ने उनसे कहा—''दयानन्द हम यह प्रयोगसिद्धि तुम्हें दोबारा न बतायेंगे और जब तक यह प्रयोगसिद्धि तुम्हें स्मरण नहीं होगी, तब तक आगे का पाठ तुम्हें नहीं पढ़ाया जाएगा। इस बार भी यदि यह प्रयोगसिद्धि स्मरण न हुई तो यमुना के जल में डूब मरना, पर मेरी कुटिया पर कदम न रखना।''

स्वामी दयानन्द ने आगे कुछ नहीं कहा। गुरु के चरणों का विनम्र

भाव से स्पर्श किया और यमुना की ओर चल दिए। निश्चय कर लिया कि यदि प्रयोगसिद्धि स्मरण न हुई तो यमुना के जल में समाधि ले लेंगे। वे सीताघाट के शिखर पर पहुँच गए। समाधि लगाई और ध्यान अष्टाध्यायी की विस्मृत प्रयोगसिद्धि पर लगा दिया। उन्होंने मन को इतना एकाग्र किया कि तन की सुधि ही बिसर गई। उन्हें ऐसा लगा कि कोई व्यक्ति उनके सम्मुख है और उन्हें विस्तृत प्रयोगसिद्धि सुना रहा है। प्रयोगसिद्धि समाप्त हुई तो स्वामी दयानन्द की चेतना लौट आई। वे प्रसन्न थे। उन्होंने प्रयोगसिद्धि दोहराई तो सम्पूर्ण स्मरण थी। दौड़ते हुए गुरु-चरणों में उपस्थित हुए और एक साँस में सम्पूर्ण प्रयोगसिद्धि सुना दी और समाधिस्थ अवस्था में अपने साथ घटी घटना भी। प्रयोगसिद्धि सुन कर गुरु भावविभोर हो गए और उन्होंने अपने प्रिय शिष्य को गले से लगा लिया। हर्षाश्रुओं से उनकी आँखें भीग गई थीं।

22. सच्चा साधक

उषा ने धीरे-धीरे अपनी लालिमा धरती पर बिखेरनी आरम्भ की। सूर्योदय में अभी विलम्ब था। एक श्रद्धालु महिला यमुना-जल में स्नान कर घर को लौट रही थी। सामने यमुना-तट की रेत पर साधना में लीन भव्य संत-आकृति को देख उसका मन श्रद्धाभाव से भर उठा। उसे उस संत के श्रीचरणों में शीश झुका आशीर्वाद प्राप्त कर लेने की इच्छा हुई। वह धीरे-धीरे समाधिस्थ संत की ओर बढ़ी और विनम्रतापूर्वक अपना मस्तक उनके चरणों पर टिका दिया। स्वामी दयानन्द माता-माता कहते हुए उठ खड़े हुए। संन्यास की मर्यादा का पालन करते हुए वे स्त्री-स्पर्श से सदा बचते रहे थे। इस चरण स्पर्श से वे एकदम चौंके और स्त्री-स्पर्श का प्रायश्चित्त करने के लिए एक निर्जन स्थान क़ी तलाश में गोवर्धन पर्वत पर पहुँच एक खण्डहर हुए मन्दिर में बैठ समाधिस्थ हो गये। तीन दिन उन्होंने साधना में व्यतीत किए। चौथे दिन जब विद्यार्जन के लिए गुरु-चरणों में पधारे तो गुरु द्वारा निरन्तर अनुपस्थित रहने का कारण पूछने पर स्वामी दयानन्द ने व्रतभंग तथा प्रायश्चित्त की पूरी घटना दण्डी स्वामी

विरजानन्द के सम्मुख प्रस्तुत कर दी। शिष्य के तप:पूत चरित्र से गुरु प्रसन्न हुए और शिष्य को आशीर्वाद देते हुए उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

23. श्रद्धालु व गुरुभक्त स्वामी दयानन्द

वृद्ध एवं नेत्रहीन होने के कारण दण्डी विरजानन्द जी के स्वभाव में सहज कठोरता आ गई थी। परिणामस्वरूप वे शिष्यों के प्रति यदा-कदा सामान्य कारणवश भी क्रुद्ध व अप्रसन्न हो जाते थे। एक दिन दण्डी जी शिष्य स्वामी दयानन्द पर क्रोधाभिभूत हो दण्ड-प्रहार कर बैठे। इस पर भी गुरुभक्त शिष्य ने विनम्रभाव से कहा—''महाराज, आप मुझे इस प्रकार न मारा करें। तप से वज्र के समान बने मेरे कठोर शरीर पर प्रहार करने से आपके कोमल हाथों को ही पीड़ा होगी।'' यह प्रसिद्ध है कि कालान्तर में स्वामी दयानन्द अपने शरीर पर पड़े चोट के चिह्न को देखकर गुरु के उपकारों का स्मरण किया करते।

एक अन्य अवसर पर जब दण्डी जी ने अप्रसन्न होकर शिष्य दयानन्द को दण्डित किया तो नैनसुख जड़िया नामक भक्त ने प्रज्ञाचक्षु गुरु से निवेदन किया—महाराज, दयानन्द हमारे समान गृहस्थी नहीं है, वह संन्यासी है। उनके आश्रम की मर्यादा का विचार करते हुए आप उनके प्रति इस प्रकार की कठोरता न किया करें। गुरु विरजानन्द ने इस परामर्श को स्वीकार करते हुए कहा—हम भविष्य में प्रतिष्ठा के साथ पढ़ायेंगे, परन्तु गुरु के प्रति भक्तिभाव से आप्लावित श्रद्धालु दयानन्द ने नैनसुख से कहा—आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए था। गुरु जी तो उपकार की भावना से ही दण्डित करते हैं, द्वेषभाव से नहीं। यह तो उनकी कृपा ही है।

विद्या-समाप्ति में 15-20 दिन ही शेष रहे थे कि एक दिन गुरु की आज्ञा से उनके स्थान पर झाड़ू लगाकर कूड़ा अभी उठा नहीं पाये थे कि टहलते हुए दण्डी जी का पैर कूड़े से जा टकराया। इससे क्रुद्ध हुए दण्डी जी ने दयानन्द को फटकारते हुए उनकी ड्योढ़ी बन्द कर दी अर्थात् उन्हें पाठशाला से बाहर जाने का आदेश दे डाला। इससे शिष्य दयानन्द को बहुत

दु:ख हुआ। कहते हैं नैनसुख जड़िया व नन्दन चौबे की संस्तुति से ही दयानन्द को क्षमा तथा पुन: पाठशाला में प्रवेश का अधिकार प्राप्त हुआ।

इस प्रकार दयानन्द की ड्योढ़ी बन्द होने का अवसर एक बार और भी आया। एक बार दण्डी जी का कोई दूर का सम्बन्धी मथुरा आया और वीतराग संन्यासी के दर्शन की कामना से पाठशाला में उपस्थित हुआ। उन दिनों दण्डी जी का कठोर आदेश था कि विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्य कोई हमारे समीप न आवे। आगन्तुक ने दयानन्द से दण्डी जी के दर्शन कराने की प्रार्थना की। दयानन्द द्वारा गुरु जी का आदेश बतला देने पर भी वह अनुनय-विनय करता रहा। इस पर सरलचित्त दयानन्द उन्हें अपने साथ ले गये तथा दण्डी जी के दर्शन करा दिये। जब वे वापिस आ रहे थे तो एक सहाध्यायी ने गुरु जी से इसकी शिकायत कर दी। इससे दण्डी जी ने दयानन्द पर अप्रसन्न हो पुन: उनका पाठशाला में प्रवेश निषिद्ध कर दिया। दयानन्द ने बहुत अभ्यर्थना की, परन्तु गुरुवर शान्त न हुए। अन्त में नैनसुख जड़िया की सिफारिश पर ही गुरु-कुटिया का द्वार खुला।

ये हैं गुरु-चरणों में अध्ययन करते हुए शिष्य दयानन्द के संस्मरण, जिनसे उनकी गुरु के प्रति अटूट आस्था, श्रद्धा, विनम्रता व अतिशय भक्तिभाव व्यक्त होता है।

24. स्वामी दयानन्द-सा दूसरा शिष्य नहीं

स्वामी दयानन्द की ग्रहण-शक्ति और तर्क-बुद्धि पर गुरु जी मोहित थे। गुरु जी का उन पर अपार स्नेह भी था। पाठ पढ़ाते समय अनेक बार अपने शिष्यों में उनकी प्रशंसा करते थे। वे कहते थे—दयानन्द-सा दूसरा शिष्य नहीं है। मेरे सपनों को यही साकार रूप दे सकेगा। मेरे विचारों को प्रख्यात करने की क्षमता दयानन्द में है।

गुरु विरजानन्द इस शिष्य की प्रबुद्धता देख प्रसन्न हो उठते और कहते—''दयानन्द, इस कुटिया में कितने ही शिक्षार्थी आए और चले गए, पर जो आनन्द तुझे पढ़ाने में आता है ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। तुम्हारी तर्क-शक्ति सराहनीय है। कुमतों का खण्डन तुम्हारे द्वारा सम्भव है।''

25. गुरु-दक्षिणा

विद्याध्ययन का समय समाप्त हो गया। अढ़ाई वर्ष तक गुरु चरणों में बैठ स्वामी दयानन्द ने निष्ठापूर्वक ऋषिकृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। अब कोई जिज्ञासा शेष नहीं थी। गुरु जी से विदाई का क्षण आ उपस्थित हुआ। यद्यपि दण्डी स्वामी अपने शिष्यों से कभी कोई भेंट नहीं स्वीकारते थे, फिर भी स्वामी दयानन्द ने गुरु के समीप खाली हाथ उपस्थित होना उचित नहीं समझा। उनके पास ऐसा कोई द्रव्य नहीं था, जिसे वे गुरु-चरणों में समर्पित कर देते, फिर भी प्रयास पूर्वक कुछ लौंग कहीं से प्राप्त कर और गुरु-कुटिया पर उपस्थित हो, उनके चरणों में सिर रख स्वामी दयानन्द ने गुरु जी से निवेदन किया—"गुरुवर, मेरा अध्ययन-काल समाप्त हुआ। अब मैं देश-भ्रमण के लिए आपकी आज्ञा चाहता हूँ। आपका आशीर्वाद मुझे चाहिए। मेरे पास श्रीचरणों में समर्पित करने के लिए कोई वस्तु नहीं है। ये थोड़े-से लौंग हैं, इन्हें आप स्वीकार करें।"

गुरु विरजानन्द जी ने दयानन्द के सिर पर स्नेह का हाथ रखा और बोले—"वत्स, लौंग मुझे नहीं चाहिएँ। गुरु-दक्षिणा के लिए ये पर्याप्त

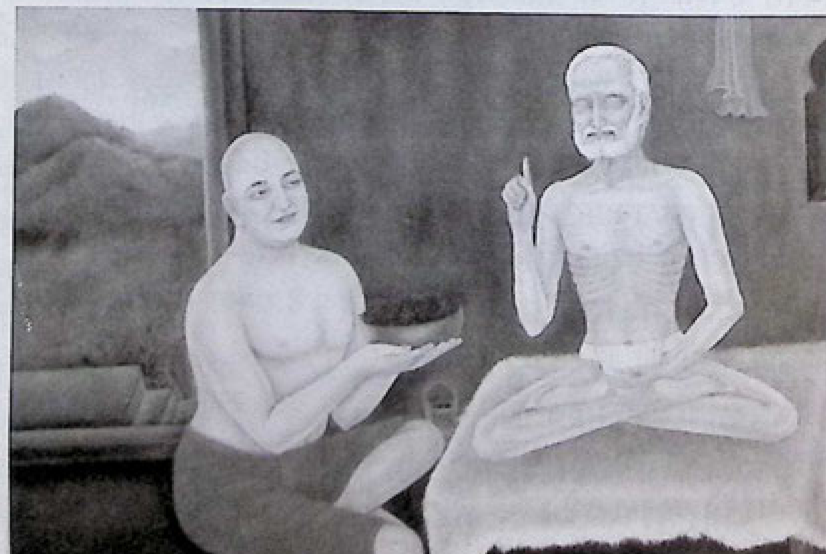

नहीं हैं।''

''आज्ञा करें गुरुदेव, मेरा तन और मन गुरु-चरणों में समर्पित है।'' स्वामी दयानन्द ने चरण छूकर विनम्र निवेदन किया।

दण्डी स्वामी ने गद्गद स्वर में कहा—''दयानन्द तुझसे मुझे यही आशा थी। देश में अज्ञान का अन्धकार छाया हुआ है। कुरीतियों में फंसे लोग नरक-सी जिन्दगी जी रहे हैं। अन्धविश्वास की जड़ें गहरी हो गई हैं। वैदिक ग्रन्थों का पठन-पाठन, चिन्तन-मनन विलुप्त हो गया है। विभिन्न मत-मतान्तरों ने अपने पैर फैला लिये हैं। दीन-हीन समाज दुर्गति की ओर लुढ़कता चला जा रहा है। समाज को अधोगति से बचाओ। लोक-कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करो। सोते देश को जागृत करो। इसके अतिरिक्त गुरु-दक्षिणा में मुझे कुछ और नहीं चाहिए।''

स्वामी दयानन्द ने अपना सिर गुरु-चरणों में रख दिया और बोले—''आपकी आज्ञा शिरोधार्य गुरुवर! दयानन्द जीवनभर समाज-सेवा से विरत नहीं होगा।''

दण्डी स्वामी प्रसन्न हुए। चरणों में नतमस्तक दयानन्द को भरपूर आशीर्वाद दिया—''परमात्मा तुम्हें सफलता दें, परन्तु ध्यान रखना अनार्ष ग्रन्थ अध्ययन के योग्य नहीं हैं, उनमें परमात्मा और ऋषियों की निन्दा है, अत: आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन ही करना।''

''ऐसा ही होगा गुरुदेव!'' विनम्र भाव से स्वामी दयानन्द ने कहा। गुरु जी से विदा ली और आगरा की ओर चल दिए।

26. समाजोत्थान के लिए प्रस्थान

गुरु विरजानन्द जी से विदाई लेकर सर्वप्रथम संवत् 1920 (सन् 1863) के वैशाख मास में स्वामी दयानन्द ने आगरा नगर में प्रवेश कर यमुना के किनारे एक बगीचे में ठहर गए। लाला गल्लामल रूपचन्द अग्रवाल के इस बगीचे में उनसे पूर्व एक और साधु विराजमान थे। वे स्वामी जी के भव्य व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि पूरे नगर में स्वामी जी के आगमन की सूचना प्रसारित कर दी।

श्रद्धालु जन आने लगे। वे महर्षि जी के दर्शनों से ही तृप्त हो जाते और उनके मुखारविन्द से उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट करते। महर्षि जी के समीप बैठ उन्हें सुख की अनुभूति होती।

श्रद्धालुओं के आग्रह पर महर्षि जी ने भगवद्गीता की कथा आरम्भ कर दी। श्रद्धालुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गई। वे भाव-विभोर हो महर्षि जी की प्रशंसा करते। भगवद्गीता की ऐसी भावपूर्ण व्याख्या उन्होंने इससे पूर्व कभी न सुनी थी। महर्षि ने यहीं पर सर्वप्रथम सन्ध्या की पुस्तक लिखी।

आगरा से चलकर महर्षि जी एक पखवाड़े तक धौलपुर (राजस्थान) में रहे और यहाँ से आबू पर्वत की ओर निकल गए। वहाँ से महर्षि जी ग्वालियर और ग्वालियर से चलकर करौली के रास्ते जयपुर पहुँच गए। वहाँ उनका आवास रामकुमार नन्दराम मोदी के बगीचे में रहा। इस नगर में वे चार मास ठहरे। नित्य उपनिषदों और गीता की कथा कहते। श्रोताओं की शंका का निवारण करते और पुराण-पंथियों से शास्त्रार्थ करते। ऐसे लोगों से जब महर्षि जी के प्रश्नों का उत्तर न बन पड़ता तो वे उन्हें गालियाँ भी देते, परन्तु महर्षि जी इन सब बातों से बेखबर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहते।

27. ईश्वर सर्वव्यापक होने से साकार नहीं हो सकता

संवत् 1922 के चैत्र मास में महर्षि जी पुष्कर चले गए। वहाँ उन्होंने ब्रह्मा जी के मन्दिर में विश्राम किया। उसी मन्दिर में निवास कर वे पाषाण-पूजा का खूब खण्डन करते थे। उनका तर्क था कि साकार वस्तुएँ एकदेशीय होती हैं। वे सर्वव्यापक नहीं हो सकतीं। परमात्मा सर्वव्यापक है, अत: साकार नहीं हो सकता। साकार की उपासना अर्थहीन है। ब्राह्मणों को महर्षि जी का ऐसा करना भला नहीं लगा। उन्होंने महर्षि जी से चर्चा करने का प्रयास भी किया, पर उनके सामने कोई टिक न सका। तब उन्होंने संस्कृत के एक विद्वान् वेंकट शास्त्री को महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार किया। उस समय तक महर्षि जी की उपदेश-शैली

और विद्वत्ता की चर्चा पूरे नगर में होने लगी थी। वेंकट शास्त्री भी महर्षि जी के सम्मुख जा शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं जुटा सके। महर्षि जी ने उनकी प्रतीक्षा की। वे जब नहीं आए तो महर्षि जी स्वयं उनके स्थान पर चले गए। उस दिन ब्राह्मण वहाँ एकत्रित थे। काफी समय उनसे शास्त्र-चर्चा हुई। अन्त में वेंकट शास्त्री पराजित हुए और उन्होंने महर्षि जी की विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। व्यंकट शास्त्री ने महर्षि जी से यह भी निवेदन किया कि वे मेरे अघोरी गुरु से अवश्य मिलें। महर्षि जी ने कोई आपत्ति न की। शास्त्री जी के अघोरी गुरु संस्कृत के विद्वान् पण्डित थे। वे एकान्तवास करते थे। वेंकट शास्त्री महर्षि जी को स्वयं अपने गुरु के पास लेकर गए। दोनों में शास्त्र-चर्चा हुई। पश्चात् अघोरी बाबा ने कहा—''महर्षि जी का पक्ष सत्य है, इसलिए इनसे झगड़ा करना व्यर्थ है।'' वेंकट शास्त्री ने साथ आए सभी ब्राह्मणों को अघोरी बाबा का मन्तव्य समझा दिया। वे सभी अपना मुँह लटकाए लौट गये। व्यंकट शास्त्री महर्षि जी की विद्वत्ता और सहज स्वभाव से इतने प्रभावित हुए कि शास्त्रार्थ के समय अपनी सेवाएँ महर्षि जी को समर्पित करने का निवेदन किया।

28. आपके सामने बोलने का साहस किसी का नहीं होता

ब्रह्मा जी के मन्दिर में सैकड़ों भक्त रोज आते थे। उनमें से बहुत से महर्षि जी के दर्शन कर लौटते थे। एक दिन एक वृद्धा ब्रह्मा मन्दिर से लौटती हुई महर्षि जी के दर्शनार्थ आ गई। महर्षि जी ने पूछा—''कहाँ से आ रही हो माता?'' वृद्धा ने कहा—''ब्रह्मा जी के दर्शन कर लौट रही हूँ महाराज।''

महर्षि जी बोले, ''माता, आपका देव कोई उपदेश देता है कि नहीं?''

''हाँ महाराज देता है।''

महर्षि जी उस वृद्धा को साथ लेकर ब्रह्मा जी के मंदिर में चले गए और उससे बोले—''माता, अपने देवता से कहो कि वह हमें भी

उपदेश करे।'' वृद्धा मुस्कुराई और बोली—''महाराज, आपके सामने बोलने का साहस किसी को नहीं होता। जो बोलता है वह आपके पीछे ही बोलता है।''

29. पुष्कर में महर्षि का प्रभाव

महर्षि जी के उपदेशों का ऐसा प्रभाव हुआ कि पुष्कर के बहुत से पुजारियों ने अपने गले की मालाएँ उतार कर फेंक दीं और घर-घर जाकर माँगना बन्द कर दिया।

भागवत के सम्बन्ध में पण्डितों ने चर्चा करते हुए उसे व्यासकृत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बताया तो महर्षि जी ने कहा कि ऐसे बहुत से ग्रन्थ हैं जो पण्डितों ने स्वयं लिखकर प्रसिद्ध आचार्यों के नाम से प्रचलित कर दिए हैं। इसी प्रकार भागवत भी वोपदेव ने लिखकर व्यास के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है।

30. अजमेर में पादरियों से शास्त्रार्थ

सन् 1866 (संवत् 1923) में ज्येष्ठ मास में महर्षि जी का आगमन अजमेर नगर में हुआ। उस समय उस नगर में पादरियों का बड़ा जोर था। ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम, ईसा का ईश्वर होना आदि विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ। महर्षि जी ने उनके सभी प्रश्नों के उत्तर दिए, परन्तु दयानन्द के किसी भी प्रश्न का उत्तर वे नहीं दे पाए तो श्रोताओं ने तालियाँ बजा दीं। इससे कुपित होकर शूलब्रेड पादरी ने महर्षि जी से कहा कि अन्य मतों के सम्बन्ध में जिस तरह आप टिप्पणियाँ करते हैं, यदि इसी तरह आप बोलते रहे तो किसी दिन कारावास का दण्ड भोगेंगे। महर्षि जी ने गम्भीरता से कहा—''सत्य के मार्ग पर चलते हुए यदि कोई दण्ड भोगना पड़े तो मैं प्रसन्नतापूर्वक भोगूँगा। सत्य के मार्ग से मैं कभी विचलित नहीं होता। किसी के द्वारा भय दिखाने से मैं सत्य का मार्ग नहीं छोड़ सकता।''

31. ब्रह्मा जी विद्वान् व सच्चरित्र थे

पादरी राबिन्सन ने एक दिन महर्षि जी को अपने गृह पर आमन्त्रित

किया और उनसे पूछा—''आपके देवता कितने पतित हैं कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री के साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया। क्या आपके पास इस प्रश्न का कोई उत्तर है?''

महर्षि जी ने तपाक से कहा—''क्यों नहीं, एक ही नाम के बहुत से व्यक्ति होते हैं। किस व्यक्ति ने ऐसा अनुचित आचरण किया है, इसके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। ब्रह्मा जी विद्वान्, सच्चरित्र और पवित्र मन वाले थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।''

पादरी राबिन्सन महर्षि जी के उत्तर से सन्तुष्ट हुए।

32. कर्नल ब्रुक्स से महर्षि की धर्म-चर्चा व गोपालन का महत्त्व

अजमेर में महर्षि जी बंसीलाल जी के उद्यान में ठहरे हुए थे। महर्षि दयानन्द की चर्चा नगर में खूब थी। राजस्थान में गवर्नर जनरल की ओर से नियुक्त पोलिटिकल एजेण्ट कर्नल ब्रुक्स महर्षि जी से भेंट करने स्वयं बंसीलाल के बगीचे में पहुँचे और आदरपूर्वक महर्षि जी से मिले और चलते समय उन्हें अपने आवास पर आने का आमन्त्रण भी दिया। कर्नल ब्रुक्स ने अगले दिन महर्षि जी के लिए गाड़ी भिजवा दी। महर्षि जी उनके निवास पर गए और घण्टों धर्म-चर्चा की। इस चर्चा में महर्षि दयानन्द ने

गोपालन के लाभ कर्नल साहब को सप्रमाण बतलाए। वे महर्षि जी के तर्कों से सहमत हुए तो महर्षि जी ने उनसे आग्रह किया कि आप गोवध क्यों नहीं बन्द करवा देते। कर्नल ब्रुक्स ने महर्षि जी से कहा कि यह मेरे अधिकार क्षेत्र से बाहर की बात है। यद्यपि कर्नल ब्रुक्स साधुओं पर आस्था नहीं रखते थे, परन्तु वे महर्षि जी के व्यक्तित्व और विद्वत्ता से इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें आदर सहित विदा किया और लाट साहब के नाम उनसे मिलने के लिए एक चिट्ठी भी लिखकर दी।

33. महर्षि के भय से जब महन्त ने नगर ही छोड़ दिया

उन्हीं दिनों रामस्नेही मत के प्रमुख महन्त अजमेर में उपस्थित थे। महर्षि जी ने उन्हें धर्म-चर्चा करने के लिए अपने निवास पर आमन्त्रित किया, परन्तु उन्होंने इस आमन्त्रण को यह कह अस्वीकार कर दिया कि हम किसी के डेरे पर नहीं जाते हैं। इसके पश्चात् महर्षि जी ने उन्हें यह कहला भेजा कि यदि आप नहीं आ सकते तो मैं ही आपके डेरे पर आ जाता हूँ। मुझे कहीं आने-जाने में कोई आपत्ति नहीं है। इस पर उस महन्त ने यह सूचना भिजवाई कि जो हमारे डेरे पर आता है, उसके सम्मान के लिए हम अपनी गद्दी से नहीं उठते हैं। जब महर्षि जी को उस महन्त का यह सन्देश मिला तो महर्षि जी ने उस संदेशवाहक से कह दिया कि हमें इस पर भी कोई आपत्ति नहीं है। निःसंदेह महन्त जी अपने आसन पर विराजमान रहें। हम तो उनसे केवल धर्म-चर्चा करना चाहते हैं। महन्त जानते थे कि वाद-विवाद में महर्षि दयानन्द से पार नहीं पाया जा सकता, अतः अगली सुबह से पूर्व ही महन्त ने अजमेर छोड़ दिया।

34. मैं शास्त्रार्थ ही नहीं, शस्त्रार्थ भी जानता हूँ

महर्षि जी अजमेर से कृष्णगढ़ पहुँचे। वहाँ के राजा वल्लभ मत के अनुयायी थे। महर्षि जी ने जब भागवत का खण्डन आरम्भ किया तो राजा की त्यौरियाँ चढ़ गईं। उन्होंने उपद्रव कर महर्षि जी को कृष्णगढ़ से बाहर करने की योजना बनाई। महर्षि जी के पास भेजने के लिए कुछ पण्डित

तैयार किये और उनके साथ उपद्रवी ठाकुर गोपालसिंह को भेज दिया। धर्म-चर्चा करना उनका उद्देश्य नहीं था। वे यह जानते भी थे कि महर्षि जी के अथाह ज्ञान-सागर में उनके पैर नहीं टिक पाएँगे। उनके हाव-भाव देखकर महर्षि जी को स्थिति समझते देर न लगी। वे अपने आसन पर विराजमान हो गए। संक्षिप्त चर्चा के बाद आगन्तुकों ने योजनानुसार हुल्लड़ आरम्भ कर दिया। महर्षि जी स्थिति से निबटने के लिए तैयार थे। वे अपने आसन पर तन कर खड़े हो गए और बोले—"मैं शास्त्रार्थ ही करना नहीं जानता, शस्त्रार्थ करना भी जानता हूँ।"

इतनी ही देर में महर्षि जी के प्रशंसक श्रीमाली वंश के बहुत-से ब्राह्मण उनकी रक्षा के लिए वहाँ आ उपस्थित हुए। स्थिति को बिगड़ते देख ठाकुर गोपालसिंह अपने साथ लाए पण्डितों को लेकर चुपचाप वहाँ से खिसक गया।

35. महाराजा जयपुर का निमन्त्रण

महाराजा जयपुर को जब यह जानकारी मिली कि महर्षि जी जयपुर में पधारे हैं तो उन्होंने व्यास बक्षीराम और ठाकुर रणजीत को भेजकर प्रार्थना की कि महर्षि जी मेरा आतिथ्य स्वीकार कर राजमन्दिर में निवास करें। यहाँ उनकी सुख-सुविधा में कोई त्रुटि न होने पाएगी। महाराजा जयपुर का निमन्त्रण महर्षि जी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि मैं राजमहलों में नहीं ठहरता हूँ। तब कुछ समय के लिए ही महल में महर्षि जी दर्शन देवें तो मैं कृतज्ञ हूँगा, ऐसी प्रार्थना महर्षि जी से की। महर्षि जी अगले दिन समय पर राजमन्दिर में पधारे। उन्हें जानकारी मिली कि महाराजा इस समय अन्तःपुर में हैं, तब महर्षि जी राजा से बिना मिले ही लौट आए और फिर वहाँ नहीं गए।

36. गुरु से अन्तिम भेंट

महर्षि जी के साथ सदैव दो-चार जिज्ञासु छात्र रहते थे। महर्षि जी उन्हें नियमित विद्याध्ययन कराते और उनकी शंकाओं का समाधान करते। आगरा के समीप ही मथुरा में गुरुधाम था। महर्षि जी गुरु के दर्शनों से

वंचित नहीं रहना चाहते थे, अत: चार-पाँच शिष्यों सहित गुरु-कुटिया पर उपस्थित हुए। गुरु-चरणों में नत मस्तक हो उन्हें विनम्रतापूर्वक एक मलमल का थान और स्वर्णमुद्रा भेंट की। 'भागवत खण्डन' पुस्तक की कुछ प्रतियाँ भी गुरुदेव को समर्पित कीं। गुरु प्रसन्न हो गए और अपने योग्य शिष्य को भरपूर आशीर्वाद दिया। महर्षि दयानन्द कई दिन गुरु के समीप रहे। अपनी शंकाओं का समाधान कराया और धर्म के गूढ़ विषयों पर गम्भीर चर्चा की। महर्षि दयानन्द की अपने गुरु जी से यह अन्तिम भेंट थी। गुरु की आज्ञा लेकर महर्षि जी मेरठ होते हुए कुम्भ के मेले में उपस्थित होने के लिए हरिद्वार चले गए।

37. कुम्भ के मेले में 'पाखण्ड-खण्डनी' पताका (हरिद्वार)

कुम्भ से एक माह पूर्व ही मार्च 1867 (फाल्गुन सुदी सप्तमी संवत् 1923) हरिद्वार पहुँच कर महर्षि जी ने भीमगोडा से ऊपर सप्तस्रोत के समीप अपना डेरा जमा लिया। स्थान खुला था। सत्य का मण्डन करने के लिए महर्षि जी ने वहाँ 'पाखण्ड-खण्डनी' नाम की पताका खुले आकाश में फहरा दी। (*इस स्थान को इस समय मोहन आश्रम के नाम से जाना जाता है। जिस स्थान पर पताका फहराई थी वहाँ आर्यसमाज द्वारा एक स्मृति-स्तम्भ का निर्माण करा दिया गया है।*) अपने व्याख्यानों में उन्होंने साम्प्रदायिकता पर गहरी चोट करते हुए पूरी शक्ति के साथ अवतारवाद, मूर्तिपूजा और श्राद्धों का खण्डन किया। इससे पूर्व लोगों ने ऐसे तर्कपूर्ण वक्तव्य नहीं सुने थे, अत: प्रतिदिन उनके उपदेशों को सुनने के लिए भीड़ बढ़ती चली गई। पौराणिक जगत् में हलचल मच गई। बहुत-से पौराणिक साधु और ब्राह्मण महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने पधारे परन्तु उनके धाराप्रवाह संस्कृत बोलने और प्रबल तर्कों के सामने कोई टिक न सका। पूरे मेले में जहाँ देखो महर्षि दयानन्द की 'पाखण्ड-खण्डनी' पताका की ही चर्चा थी। पौराणिक विद्वानों से जब महर्षि जी के तर्कों और प्रमाणों का उत्तर न दिया गया तो वे गाली-गलौच पर उतर आए। उनके विरुद्ध वक्तव्य देने आरम्भ कर दिए। कुछ उन्हें नास्तिक कहने लगे, परन्तु महर्षि जी इन सब

की उपेक्षा कर अपने प्रचार-कार्य में लगे रहे।

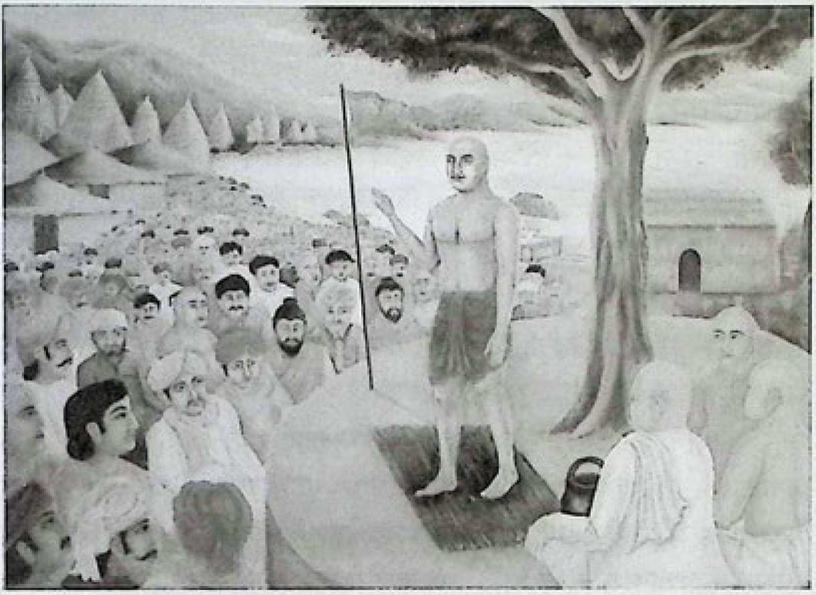

महर्षि जी सोचते थे कि इस मेले के अवसर पर उपस्थित पण्डितों और साधुओं को वे सत्य की राह पर ला सकेंगे, परन्तु वे उस समय निराश हुए जब उन्हें परिणाम आशा के अनुरूप नहीं मिले। उस महाकुम्भ में उन्हें कोई भी ऐसा सन्त, संन्यासी और विद्वान् नहीं मिला जो सत्य की हामी भरने के लिए तैयार हो। लोग वेद-विमुख हो रहे थे। उन्होंने अभी तक वेदों के दर्शन तक न किए थे। ऐसे लोग महर्षि जी के पास वेद की प्रतियाँ देखकर आश्चर्यचकित थे, परन्तु अज्ञान के अन्धकार की परतें हटाने का साहस कोई नहीं जुटा पा रहा था। ऐसा कोई न था जिसके हृदय में देश के दीन-दु:खियों के प्रति स्नेह-भावना हो। महर्षि जी ने देश के अधिकतर भागों में भ्रमण के समय देश की दयनीय अवस्था देखी। परतन्त्रता का जीवन जी रहे लोग कंगाली की अवस्था झेलने के लिए विवश थे। महर्षि जी ने अकाल-पीड़ित लोगों को मुट्ठी भर अनाज के लिए तरसते देखा। पहाड़ी प्रदेशों में कोल, संथालों की दयनीय दशा देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा।

महर्षि जी सोचते थे कि इस मेले में देशभर के साधु-संन्यासी और महात्मा एकत्रित होंगे। वे उन्हें झकझोर कर जागृत कर देंगे, जिससे वे देश की दशा सुधारने में प्रवृत्त हो जाएँगे। लोग उनमें रुचि लेंगे। आर्यावर्त अन्धविश्वासों और पाखण्डों से मुक्त हो अज्ञान के अन्धकार से छूट जाएगा, परन्तु ऐसा न हो सका। स्वार्थ की परिधि से बाहर निकल कर सोचने के लिए कोई तैयार नहीं था। पाखण्डी और ढोंगी उन्हें बहुत मिले, परन्तु कोई ऐसा न मिला जो राष्ट्र और धर्म-प्रेम में पक्का हो। यद्यपि काफी लोग महर्षि जी के अनुयायी हो गए थे, परन्तु महर्षि जी इतने से सन्तुष्ट न हुए। उन्हें लगा कि इस मार्ग पर चलने के लिए अभी और सतत साधना, तप एवं त्याग की आवश्यकता है। उन्होंने अविलम्ब एक लंगोट और कौपीन को छोड़ सब कुछ उसी मेले में बाँट दिया। पुस्तकें तक उन्होंने अपने पास नहीं रखीं। एक स्वर्णमुद्रा, मलमल का थान और महाभाष्य की प्रति अपने गुरु दण्डी स्वामी श्री विरजानन्द जी के लिए मथुरा भेज दी। सत्य के प्रति तथाकथित सन्तों की उपेक्षा वृत्ति देखकर महर्षि जी ने एक बार तो मौन धारण कर लिया। सिंह की तरह दहाड़ कर सत्य का पक्ष रखने वाले इस सन्त ने काफी समय शान्त भाव से चिन्तन में बिताया, परन्तु मन में निश्चय था कि अपना सम्पूर्ण जीवन लोकहितार्थ जन-जागरण करता हुआ व्यतीत करूँगा।

कुछ समय पश्चात् उन्होंने हरिद्वार छोड़ दिया। वहाँ से शुक्रताल, परीक्षितगढ़, कर्णताल, फर्रुखाबाद होते हुए भाद्रपद संवत् 1924 में अनूपशहर पधारे। यहां नर्मदेश्वर मन्दिर के समीप सती की मढ़ी में ठहरे।

38. महादेव की पूजा मन्दिर में क्यों?

कई पण्डित लोग उनसे शास्त्रार्थ करने आते रहे। पण्डित अम्बादत्त जी शास्त्री वृद्ध थे और कमजोर भी। उन्होंने महादेव की पूजा-विषय पर महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया। समय पर श्रोताओं के समक्ष दोनों विद्वान् आसनों पर विराजमान हो गए। शास्त्री जी का मन्तव्य था महादेव की पूजा होनी चाहिए, उससे इष्ट फलों की प्राप्ति होती है।

महर्षि जी ने शास्त्री जी से कहा—''क्या आप यह मानते हैं कि महादेव का निवास कैलाश पर्वत पर है?'' शास्त्री जी ने उत्तर दिया—''हाँ, मानते हैं।''

महर्षि जी बोले—''इसका अर्थ यह हुआ कि महादेव इन मन्दिरों में नहीं हैं।'' पण्डित अम्बादत्त जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। स्वामी जी ने पुनः स्पष्ट किया कि जब शिव जी यहाँ हैं ही नहीं तो फिर मन्दिर में पूजा किसकी करें?''

पण्डित अम्बादत्त को पसीना आ गया। वे घबरा गए।

महर्षि जी ने जब यह देखा तो स्नेहपूर्वक बोले—''पण्डित जी, आप घबराइए नहीं। थोड़ी देर विश्राम कीजिए। लगता है आपको वाद-विवाद में भाग लेने का अभ्यास नहीं है।''

पण्डित अम्बादत्त सामान्य हुए तो उन्होंने महर्षि जी के मत से सहमति प्रकट की। इस शास्त्रार्थ से प्रभावित हो बहुत से श्रोताओं ने अपनी कण्ठियाँ और माला आदि गंगा को भेंट कर दीं, परन्तु कुछ स्वार्थी लोग महर्षि दयानन्द की जान के ग्राहक हो गए। जिनकी जीविका इस धन्धे से बंधी थी, वे महर्षि जी के जीवन का अंत कर देना चाहते थे।

39. मैं तो लोगों को बन्धन-मुक्त कराने आया हूँ

महर्षि जी के बोलने की शैली से प्रबुद्ध लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे। उनके श्रोताओं में हर वर्ग और सम्प्रदाय के लोग सम्मिलित होते थे। इन्हीं श्रोताओं में वहाँ के तहसीलदार सैयद मुहम्मद नित्य ही महर्षि जी के उपदेश सुनने के लिए आते थे। वे महर्षि जी के भक्त हो गए थे। एक दिन उन्हें जानकारी मिली कि किसी धर्मान्ध ब्राह्मण ने पान में स्वामी जी को विष दे दिया है। उन्होंने उस ब्राह्मण की खोज की और उसे कारावास में डाल दिया। यद्यपि न्योली क्रिया (योग द्वारा विष निकालने की क्रिया) के माध्यम से महर्षि जी ने विष निकाल दिया था और वे पूर्णतः स्वस्थ हो गये थे। महर्षि जी को भी इस घटना की जानकारी मिल गई। अगले दिन जब तहसीलदार साहब महर्षि जी के समीप पहुँचे तो

महर्षि जी ने उनसे कहा—"आपने एक व्यक्ति को कारावास में डाल दिया है। यह अच्छा नहीं किया।" तहसीलदार साहब ने विनम्र भाव से कहा—"उसने महाराज को विष देने का घोर अपराध किया है।"

महर्षि जी ने कहा—"यह तो ठीक है, परन्तु हम तो लोगों को बन्धन-मुक्त कराने के लिए आए हैं। हमारे कारण कोई बन्धन में क्यों रहे?"

तहसीलदार सैयद मुहम्मद महर्षि जी की उदार भावना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने जाते ही उस ब्राह्मण को मुक्त कर दिया।

40. स्त्रियों को गायत्री-जाप का अधिकार

समाज में व्याप्त अन्धविश्वास ने स्त्रियों को गायत्री मन्त्र के उच्चारण और शिक्षा से वञ्चित कर दिया था। इस अन्धविश्वास पर महर्षि जी कड़ी चोट करना चाहते थे, इसलिए जब महर्षि जी कर्णवास (बुलन्दशहर, उत्तरप्रदेश) में पधारे तो उन्होंने प्रथम ठाकुरों को यज्ञोपवीत का महत्त्व समझाकर उन्हें यज्ञोपवीत धारण कराया तथा घर-घर में यज्ञ का चलन आरम्भ कराया।

ठाकुर गोपालसिंह की 90 वर्षीया विधवा ताई हंसा ठकुरानी का मन भी हुआ कि महर्षि जी की सेवा में उपस्थित होकर गायत्री का उपदेश सुने, परन्तु उसे सन्देह था कि ब्राह्मण इसका विरोध करेंगे। वे धार्मिक वृत्ति की सरलचित्त महिला थीं। उसने संकोच के साथ गोपालसिंह के द्वारा महर्षि जी से अपनी इच्छा व्यक्त की और प्रार्थना की कि वे मुझे भी गायत्री का उपदेश देकर आशीर्वाद प्रदान करें। महर्षि जी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। वृद्धा हंसा ठकुरानी ने महर्षि जी के श्रीचरणों में उपस्थित होकर विनम्र प्रणाम किया। महर्षि जी ने उसे पाषाण-पूजा छोड़कर 'ओ३म्' का जाप करने की प्रेरणा दी और गायत्री का पाठ सिखाया। हंसा ठकुरानी ऐसी प्रथम सौभाग्यशाली विधवा महिला थी जिसे गायत्री को जपने का अधिकार ऋषि दयानन्द के द्वारा प्राप्त हुआ। *(इतिहास की यह एक क्रान्तिकारी घटना है। उस समय पौराणिक पण्डितों ने महिलाओं को*

गायत्री मन्त्र पढ़ने से वंचित किया हुआ था। यदि कोई छिप कर सुन भी लेती थी तो उसे पाखण्डी धर्माचार्यों द्वारा दण्डित किया जाता था।)

41. मूर्तियों का गंगा में विसर्जन कर्णवास में

महर्षि जी द्वारा मूर्ति-पूजा खण्डन की चर्चा सुनकर पण्डित हीरावल्लभ से न रहा गया और उन्होंने महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने की ठानी। वे व्याकरण के अच्छे विद्वान् थे और ऋग्वेद तथा यजुर्वेद उन्हें कण्ठस्थ थे। सभा का आयोजन किया गया। हीरावल्लभ बहुत से पण्डितों को साथ लेकर सभास्थल पर पधारे। इस शास्त्रार्थ को सुनने के लिए हजारों व्यक्ति वहाँ एकत्रित हो गए थे। हीरावल्लभ शास्त्रार्थ-स्थल में अपने साथ कई मूर्तियाँ लेकर गए। उन्होंने उन मूर्तियों को मंच पर रखा और घोषणा कर दी कि मैं अपने तर्कों और प्रमाणों के द्वारा साकार ब्रह्म की उपासना सिद्ध करके मंच से उतरूँगा। मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में यह वाद-विवाद छः दिनों तक निरन्तर चलता रहा। हीरावल्लभ भी संस्कृत भाषण में पारंगत थे, परन्तु महर्षि जी के वैदिक प्रमाणों और पाण्डित्यपूर्ण तर्कों से उनके पैर उखड़ गए। उन्हें महर्षि जी के प्रश्नों का कोई उत्तर न सूझा। अन्त में उन्होंने महर्षि जी के पक्ष को सत्य कहकर सभी मूर्तियों को गंगा को भेंट कर दिया।

42. शीत-निवारण में योग का प्रभाव व अभ्यास

उतरते माह के शीत-भरे दिन, हल्की पुरवैया के शीतल झोंके, रात का दूसरा पहर और गंगा के किनारे की ठण्डी रेत, उस पर लंगोटी लगाए पद्मासनस्थ साधना-सिद्धि में संलग्न ऋषि दयानन्द, तभी बदायूँ के कलैक्टर अपने एक पादरी मित्र के साथ आखेट के लिए उधर आ निकले। शरीर को कंपा देने वाले शीत में निर्वस्त्र साधु को ध्यान-मग्न देखा तो उनके भव्य मुख-मण्डल को वे उस समय तक निहारते रहे, जिस समय तक ऋषि का ध्यान भंग न हुआ। आँखें खुलते ही विनम्र भाव से उन्होंने महर्षि जी को अभिवादन किया और बोले—"इस हाड़ कंपा देने वाली शीत-रात्रि में आप बिना वस्त्र अचल बैठे अपने ध्यान में मग्न हैं, जबकि हम

लोग ऊनी वस्त्र पहनने के पश्चात् भी ठण्ड से अपने शरीर में कम्पन अनुभव कर रहे हैं। आपको शीत भरे मौसम में भी ठण्ड नहीं सताती इसका कारण हमें समझाइए।''

महर्षि जी मुस्कुराए और उनसे कहा—''योग का प्रभाव और शरीर का अभ्यास ही इसका कारण है। जिस प्रकार आपने इस शीत में भी गर्म वस्त्रों से अपना मुख नहीं ढाँपा, फिर भी उसे ठण्ड नहीं लगती। इसलिए कि मुख को शीत सहने का अभ्यास हो गया है। इसी प्रकार मेरे पूरे शरीर को शीत सहने का अभ्यास हो गया है।''

43. 'अहं ब्रह्मऽस्मि' का तर्कसंगत प्रतिवाद

महर्षि जी कर्णवास से चलकर चासीगाम (जि० बुलन्दशहर) के समीप गंगा किनारे एक कुटिया बना एकान्त निवास करने लगे। आस-पास के ग्रामीण ही महर्षि जी के भोजन की व्यवस्था करते और धर्मलाभ उठाते। खन्दोई गाँव (जि० बुलन्दशहर) समीप ही था। उस गाँव का निवासी छत्रसिंह जाट उनकी सेवा में श्रद्धाभाव से आता था, परन्तु वह पक्का नवीन वेदान्ती था। 'ब्रह्म के अतिरिक्त पूरा जगत् मिथ्या है,' यही कहता। 'अहं ब्रह्मऽस्मि' की रट लगाता। एक दिन इसी सिद्धान्त की पुष्टि करने में वह लगा रहा। महर्षि जी पहले तो सुनते रहे, फिर उन्होंने थोड़ा-सा आगे झुककर उसके गाल पर चपत लगा दी। वह तिलमिला उठा और बोला—''आप जैसे विद्वान् सन्त को ऐसा आचरण करना शोभा नहीं देता।'' महर्षि जी मुस्कुराकर बोले—''चौधरी साहब, आपके मतानुसार ब्रह्म ही सत्य है और वह आप हैं ही, फिर थप्पड़ मारने वाला कौन है? आप अन्य सभी को मिथ्या किस आधार पर सिद्ध करते हैं।'' छत्रसिंह पानी-पानी हो गया और उसने महर्षि जी के चरण पकड़ लिये।

44. छुआछूत के विरोधी

चासी के समीप ठहर कर कुछ समय के पश्चात् महर्षि जी अनूपशहर (बुलन्दशहर) आ विराजे। वे छुआछूत और जाति-पाँति के विरोधी थे।

उनका दयालु हृदय सभी को समभाव से देखता था। अनूपशहर का उमेदा नाई महर्षि जी का भक्त हो गया था। महर्षि जी का यह नियम था कि जो भक्त श्रद्धाभाव से प्रथम भोजन उनकी सेवा में ले आए, वे उसे ही ग्रहण कर लेते थे। एक दिन उमेदा के मन में भी महाराजश्री को भोजन कराने की इच्छा हुई। प्रीतिपूर्वक अपनी गृहिणी से भोजन बनवा कर श्रीचरणों में उपस्थित हुआ और भोजन कर लेने की प्रार्थना की। महर्षि जी ने शान्तभाव से भोजन करना आरम्भ कर दिया। उस समय महर्षि जी के समीप कुछ ब्राह्मण भी धर्म-चर्चा का आनन्द ले रहे थे। उन्होंने आश्चर्य से महर्षि जी की ओर देखकर कहा—''महर्षि जी आप क्या कर रहे हैं? यह तो नाई है। आप नाई की रोटियाँ खा रहे हैं!''

महर्षि जी ने उनकी ओर बिना देखे ही उत्तर दिया—''नहीं, मैं नाई की रोटियाँ नहीं खा रहा हूँ। मैं तो गेहूँ की रोटियाँ खा रहा हूँ।''

45. कर्णवास में रासलीला का खण्डन एवं राव कर्णसिंह से सामना

महर्षि जी विभिन्न स्थानों में धर्म-चर्चा और पाखण्डों का खण्डन करते हुए संवत् 1925 (सन् 1868) के ज्येष्ठ मास में कर्णवास पहुँच गए। उस समय कर्णवास में गंगा के मेले की धूम थी। उस अवसर पर करौली के रईस राव कर्णसिंह भी दल-बल सहित गंगा-स्नान के लिए आए हुए थे। उन्होंने एक ओर गंगा के किनारे मण्डप बनवा रासलीला का आयोजन किया। मेले में पधारे सभी साधु-सन्तों और पण्डितों को उसमें आमन्त्रित किया। उनका आमन्त्रण महर्षि जी को भी मिला, परन्तु महर्षि जी उसमें सम्मिलित नहीं हुए और रासलीला का खण्डन करते रहे। अगले दिन राव कर्णसिंह अपने समर्थकों सहित महर्षि जी की कुटिया पर आ पहुँचे और क्रुद्ध होकर स्वामी जी से बोले—''सभी साधु-सन्त हमारी रासलीला में पधारे। आप क्यों नहीं आए?'' महर्षि जी उसकी भाव-भंगिमाओं से उसका उद्देश्य समझ गए थे। उन्होंने उत्तर दिया—''हम ऐसे निन्दनीय कृत्यों में सम्मिलित नहीं होते हैं।''

क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गए। वह गरज कर बोला—''आप रासलीला को निन्दनीय कृत्य कहते हैं। आप गंगा और अवतारों की निन्दा भी करते हैं। मैं इनकी निन्दा करने वालों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता हूँ। आप को सँभल कर बोलना चाहिए।'' और उसका हाथ तलवार की मूठ पर चला गया। महाराज का उपदेश सुन रहे सज्जनों के चेहरे पर अनिष्ट घट जाने के भाव अंकित होने लगे, परन्तु महर्षि जी सहज भाव से बोले—''हम किसी की निन्दा नहीं करते हैं, जिसे जैसा देखते हैं, वैसा ही कहते हैं। हमारे सामने कोई हमारे महापुरुषों का स्वांग भरे और हम उसे देखते रहें, यह कर्म अति निन्दनीय है। अति निर्बल व्यक्ति भी अपने पूर्वजों के स्वांग को सहन नहीं कर सकता। आप स्वयं अपने महापुरुषों का ऐसे व्यक्तियों द्वारा स्वांग भराते हैं जो आचरण-पतित हैं। ऐसे कार्य करते हुए लज्जा आनी चाहिए।''

महर्षि जी की यह वार्ता सुनकर राव कर्णसिंह आपे से बाहर हो गए। वे अपनी तलवार लेकर उठ खड़े हुए। उनके साथ उनके समर्थक भी खड़े हो गए। शस्त्र भी उनके पास थे। ऐसा देख श्रद्धालुजन घबरा गए, परन्तु महर्षि जी ने मुस्कुराते हुए कहा—''कर्णसिंह, साधुओं से शास्त्रार्थ किया जाता है। यदि आपको शस्त्रार्थ करना है तो फिर महाराजा जयपुर या जोधपुर से जाकर भिड़ना चाहिए और यदि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो वृंदावन से अपने गुरु रंगाचार्य को ले आइए।''

गुरु का नाम सुनते ही राव कर्णसिंह की आँखों में खून उतर आया। उसने तलवार को म्यान से बाहर निकाल लिया और महर्षि जी को अपशब्दों से सम्बोधित किया। यह दृश्य देख श्रोताओं की साँसें रुक गईं। राव कर्णसिंह क्रोध में अन्धा हो गया था। उसने तलवार वाला हाथ ऊँचा किया और महर्षि जी की ओर बढ़ा। महर्षि जी सँभल कर बैठे हुए थे। उन्होंने स्फूर्ति के साथ उसका खड्ग वाला हाथ कलाई से पकड़ लिया और इतने बल से दबाया कि उसके हाथ से तलवार छूट गई। उसे पसीना आ गया। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। महर्षि जी ने बाएँ हाथ से तलवार की मूठ पकड़ उसकी नोंक को धरती पर टेककर इतने जोर से

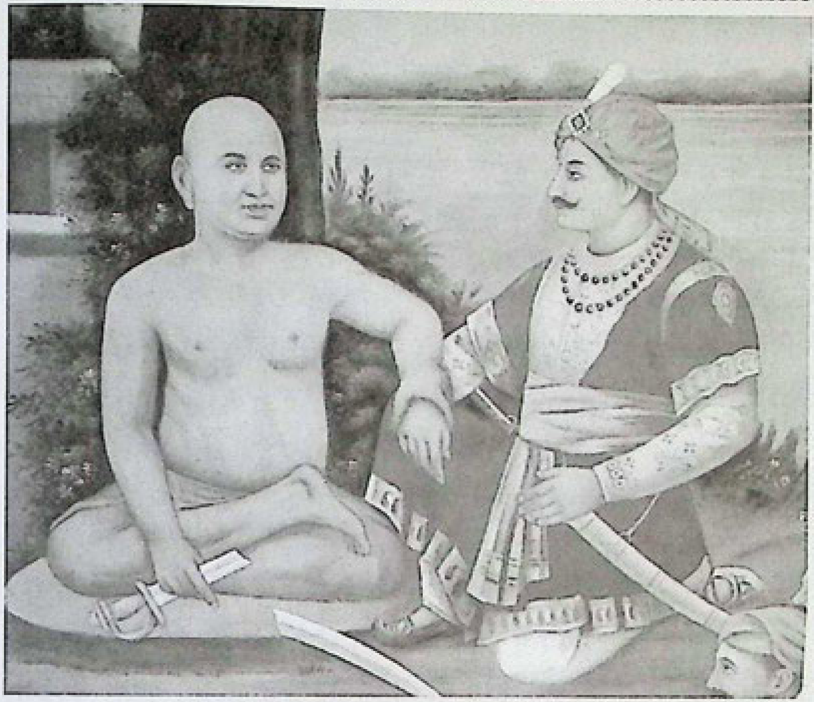

दबाया कि उसके दो टुकड़े हो गए। महर्षि जी ने उससे कहा—''हम संन्यासी हैं, इसलिए कभी दुर्भावना से ग्रस्त हो किसी का अहित नहीं चाहते हैं। जाओ, परमात्मा तुम्हारा हित करें और तुम्हें सुबुद्धि प्रदान करें।''

राव कर्णसिंह अपना-सा मुँह लेकर अपने समर्थकों सहित चुपचाप लौट गया।

46. मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ में महर्षि जी का सामना सम्भव नहीं

यहाँ से चलकर महर्षि जी सोरों (जि० एटा, उ०प्र०) पहुँचे और अम्बागढ़ (एटा) में निवास किया। वहाँ अंगद नाम के संस्कृत विद्वान् रहते थे। व्याकरण में वैसा विद्वान् उस क्षेत्र में नहीं था। मूर्ति-पूजा का पक्ष सिद्ध करने के लिए वे महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने के लिए उपस्थित हुए।

महर्षि जी सरल संस्कृत धारा-प्रवाह बोलते थे। उन्होंने बोलना आरम्भ किया तो श्रीमान् अंगद जी महर्षि जी से अभिभूत होकर कोई भी ऐसा पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके, जिससे मूर्ति-पूजा सिद्ध हो सकती हो। अन्त में उन्होंने कहा कि महर्षि जी का पक्ष ही सत्य है और वे महर्षि जी के भक्त बन गये। रंगाचार्य ने जब यह सुना कि पण्डित अंगद भी महर्षि जी के सम्मुख नहीं ठहर सके तो वे भी महर्षि जी के समीप आने का साहस न जुटा सके।

चिद्घनानन्द स्वामी को जब यह जानकारी मिली कि सोरों में विराजमान महर्षि दयानन्द नाम के साधु मूर्ति-पूजा का खण्डन करते हैं, तो वे शास्त्रार्थ करने के लिए सोरों में उपस्थित हुए और महर्षि जी तक अपना मन्तव्य भिजवा दिया। महर्षि जी इस कार्य के लिए सदैव उद्यत रहते थे। महर्षि जी ने तुरन्त उन्हें सूचना भिजवा दी कि जब आपकी इच्छा हो तब मेरे निवास पर आकर मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में चर्चा कर सकते हैं और यदि आप न आ सकें तो मैं स्वयं आपके डेरे पर उपस्थित हो जाऊँगा, परन्तु तब तक उन्हें महर्षि जी की तर्क-शक्ति, उनके संस्कृत-ज्ञान और विद्वत्ता की जानकारी मिल गई थी, इसलिए उन्होंने इस विषय में फिर कोई चर्चा नहीं की। वे महर्षि जी के निवास पर भी नहीं आये और न उन्होंने महर्षि जी को अपने स्थान पर बुलवाया। महर्षि जी ने उनकी प्रतीक्षा की परन्तु कोई परिणाम न निकल पाया। महर्षि जी उनसे भेंट करने की तीव्र इच्छा रखते थे। उन्हें एक दिन जानकारी मिली कि स्वामी चिद्घनानन्द गंगा की ओर गए हैं। उस समय दिन का तीसरा पहर ढल रहा था। महर्षि दयानन्द तुरन्त गंगा की ओर निकल गए। एक मील की दूरी पर जाकर महर्षि जी ने उन्हें पकड़ लिया। गंगा के किनारे दोनों ने आसन जमाया। महर्षि दयानन्द शास्त्रार्थ के समय संस्कृत में ही वार्ता करते थे। उन्होंने चिद्घनानन्द जी से मूर्तिपूजा के पक्ष में वेदों से कोई प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कहा, परन्तु वे महर्षि जी के वक्तव्य और व्यक्तित्व से इतने हतोत्साहित हुए कि उनके मुँह से कोई शब्द न निकल सका। महर्षि जी ने काफी प्रयत्न किया, परन्तु उसका मौन भंग कराने में

असफल रहे। अन्त में महर्षि जी अपने आवास पर लौट आए।

47. वही आत्म-प्रेमी है

सोरों में कोई ऐसा स्थान नहीं था, जहाँ महर्षि जी के सौम्य स्वभाव और विद्वत्ता की चर्चा न होती हो। महर्षि जी का नियमित और संयमित जीवन सभी जनों को प्रभावित करने में समर्थ था। वे नियमित रूप से प्रात: गंगा के तीर पर भ्रमण के लिए जाते थे। एक दिन एक वेदान्ती गंगा के किनारे उन्हें मिला और बोला—''महात्मन्, आप परम वैरागी सन्त हैं, फिर खण्डन-मण्डन के चक्कर में क्यों पड़े हैं। आत्मा से प्रेम करो और मस्त रहो।''

महर्षि जी हँस पड़े। उसके समीप बैठते हुए बोले—''क्या आप भी आत्मा से प्रेम करते हैं?''

साधु ने कहा—''और क्या मैं असत्य भाषण कर रहा हूँ? मैं उस आत्मा से प्रेम करता हूँ जो चींटी से लेकर हाथी तक में विद्यमान है।'' महर्षि दयानन्द अब गम्भीर हो गए थे। उन्होंने उस साधु से कहा—''आपको सत्य बोलने का भ्रम हो गया है। यदि आत्मा से प्रेम कर लेते तो फिर स्वयं तक सीमित न रहते। कभी से जन-सेवा के लिए समर्पित हो गए होते। आप अपने भोजन, वस्त्र और आवास तक सिमटे हुए हैं। इस देश में वे लोग भी हैं जो अँधेरी कोठरियों में रहकर पशुवत् जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हैं। प्रयास करने पर भी जो दोनों समय का भोजन नहीं जुटा पाते। शरीर ढाँपने के लिए जिनके पास पर्याप्त वस्त्र नहीं हैं। कहीं-कहीं इससे बदतर जीवन भी जी रहे हैं लोग। उनके पास सिर छिपाने के लिए झोंपड़ी तक का प्रबन्ध नहीं है। वे खुले आसमान के नीचे ही अपनी सम्पूर्ण जिन्दगी व्यतीत कर देते हैं। उनके बच्चे शिक्षा से वंचित हैं। वे लोग अन्धविश्वास और रूढ़ियों के बीच फंसे नारकीय जीवन जी रहे हैं। क्या कभी आपने उनकी सुध ली है? अपने सुख-साधन जुटाने के साथ उनके हितों की चिन्ता भी आपको करनी चाहिए। आत्म-प्रेम वही होता है, जिसमें समभाव-दृष्टि हो। ऐसे सत्पुरुष के हृदय से सब प्रकार के

भेद-भाव बिसर जाते हैं। वही साधु है, वही सज्जन है, वही आत्म-प्रेमी है।''

साधु अविराम महर्षि जी की तेजस्वी मुखाकृति को निहारता रहा। वह आत्म-विस्मृत हो गया था। श्रद्धावनत हो उसने श्रीचरणों की वन्दना की और अपने अपराध-भाव को क्षमा करने की प्रार्थना की।

यहाँ से चलकर महर्षि जी शाहबाजपुर में पधारे। वहीं उन्हें अपने आदर्श गुरु के महाप्रयाण की सूचना मिली। वे उदास हो गए। कुछ देर शान्त रहे फिर खिन्न मन से बोले—''आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है।''

48. स्वार्थी जनों द्वारा समाज-सुधारक महर्षि दयानन्द की प्राण-हानि का प्रयास

भारतवर्ष में उस समय महर्षि दयानन्द ही ऐसे अकेले साधु थे जो धर्मान्धता, छुआछूत, अन्धविश्वास, पाखण्ड, जातिगत भेदभाव और अशिक्षा के विरुद्ध जूझ रहे थे। प्रबुद्ध लोग उनके अनुयायी बन सद्धर्म प्रचार में सहयोगी हो गए थे, परन्तु स्वार्थी और ढोंगी लोग उनके प्राण लेने पर उतर आए थे।

शाहबाजपुर (उ०प्र०) में रहते हुए ठाकुर गंगासिंह उनके भक्त बन गए थे। नित्य उनके प्रवचन सुनने जाते। एक दिन दो वैरागी बाबा ठाकुर गंगासिंह जी के पास गए और उनसे कुछ समय के लिए अपनी तलवार दे देने के लिए कहा। उन्होंने तलवार लेने का कारण पूछा तो वे आवेश में बोले—''गप्पाष्टक दयानन्द के जीवन का हम अन्त कर देना चाहते हैं। वह देवी-देवताओं का अपमान करता है। भागवत का खण्डन करता है। अब वह हमारे हाथ से बचकर कहीं नहीं जा सकता।''

ठाकुर गंगासिंह ने कहा—''वे उत्तम साधु हैं। उनका संग करने के बाद ही आप उनको समझ सकेंगे। याद रखना इस विचार को लेकर पुनः मेरे पास आने का साहस न करना, अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।'' ऐसा सुनकर वे चले गए। इसके उपरान्त ठाकुर साहब महर्षि जी

की सेवा में पधारे और उन्हें वैरागियों की पूरी घटना कह सुनाई। महर्षि जी मुस्कुराए और बोले—"मेरा वध करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। आप निश्चिन्त होकर विश्राम करिए।" इस पर भी गंगासिंह ठाकुर पूरी रात महर्षि जी की सेवा में प्रहरी की तरह जागते रहे।

49. अन्न दूषित नहीं

महर्षि जी प्रचारार्थ फर्रुखाबाद (उ०प्र०) में पहुँचे। नगर से बाहर लाला जगन्नाथ के विश्रान्तघाट पर जाकर विराजे। नियमित रूप से नगरवासी उनके प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। कुछ पण्डित लोग महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने की चर्चा तो करते परन्तु उनके सम्मुख आने का साहस न जुटा पाते।

उस नगर में घर-गृहस्थी बसा कर रहने वाले कुछ ऐसे भी लोग थे जिन्हें साधु कहकर पुकारा जाता था, परन्तु उनके हाथ का बना भोजन ब्राह्मण नहीं करते थे। एक दिन एक श्रद्धालु साधु परिवार का सदस्य अपने घर कढ़ी-भात बनवाकर महर्षि जी की सेवा में उपस्थित हुआ और भोजन कर लेने की प्रार्थना की। भोजन का समय था। महर्षि जी ने प्रेमपूर्वक शान्तभाव से भोजन किया। इस बात की जानकारी जब वहाँ के ब्राह्मणों को हुई तो उन्होंने भारी विरोध किया। वे महर्षि जी के समीप जाकर बोले—"हम लोग भी इन साधुओं द्वारा बना भोजन नहीं करते हैं। इनके हाथ का बना भोजन करके आदमी पतित हो जाता है। ऐसा करना आपके लिए उचित नहीं था।"

महर्षि जी उनकी बातें सुनकर हँसते हुए बोले—"किसी के हाथ से बना अन्न दूषित नहीं होता। अन्न दूषित तब होता है जब वह अनुचित साधनों से प्राप्त किया जाए या उसमें किसी अखाद्य वस्तु का मिश्रण कर दिया जाए। इन लोगों का अन्न परिश्रम से कमाया हुआ अन्न है, इसलिए इसके ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है। ऐसे पवित्र अन्न को ग्रहण करने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।"

50. अच्छा कर्म ही अच्छा है

महर्षि जी को सुनने के लिए सभी धर्मों और जातियों के लोग सम्मिलित होते थे। सत्संग के पश्चात् एक दिन कुछ मुसलमान महर्षि जी के समीप आए और अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए बोले कि परमात्मा ने मुहम्मद साहब को हमारे लिए भेजा। उन्होंने हमारी अच्छाई के लिए आदर्श प्रस्तुत किए। महर्षि जी ने कहा कि देखो हमारी बात का बुरा नहीं मानना। सिर की चोटी कटवा कर इतनी लम्बी दाढ़ी रखने में आखिर कौन-सी अच्छाई है ?

वे चुप हो गए।

फर्रुखाबाद में नामधारी ब्राह्मणों का बड़ा भारी जमावड़ा था। महर्षि जी ने कहा कि कोई भी तब तक ब्राह्मण नहीं हो सकता जब तक कि उसका गुण और कर्म ब्राह्मणत्व के अनुरूप नहीं हो। महर्षि जी के इस कथन से ब्राह्मण रुष्ट हो गए। महर्षि जी के तर्कों का उनसे कोई उत्तर न बन पाया तो उन्होंने महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने के लिए हरिगोपाल शास्त्री को आमन्त्रित किया।

हरिगोपाल ने मूर्तिपूजा की पुष्टि करने का बहुतेरा प्रयास किया, परन्तु पुष्टि में आर्ष ग्रन्थों का एक भी प्रमाण प्रस्तुत न कर सके।

इस पर वे काशी पहुँचे और वहाँ के पण्डितों से मूर्तिपूजा की पुष्टि में हस्ताक्षर करवा लिये। ये हस्ताक्षर इतनी आसानी से नहीं हुए, बहुत दिन लगाकर मोटे चढ़ावे के बाद हुए। फर्रुखाबाद पहुँच कर उन्होंने महर्षि जी के निवास के समीप बड़ा भारी पण्डाल लगा दिया। पूरे नगर के ब्राह्मण और पोंगापंथी वहाँ उपस्थित थे। महर्षि जी का स्थान वहाँ से ऊँचाई पर था। वे लोग महर्षि जी के साथ हुड़दंग करने के लिए तत्पर थे। शास्त्रार्थ करने के लिए कोई विद्वान् उनके पास नहीं था। महर्षि जी उनका आशय समझ रहे थे अतः अपनी कुटिया में बैठे अध्ययन में लगे रहे। हरिगोपाल महर्षि जी को नीचे आने के लिए संदेश भेज रहे थे। महर्षि जी ने कहा कि नीचे खड़े होकर हंगामा करने से कोई लाभ नहीं है। शास्त्रार्थ

करना हो तो ऊपर आ जाइए। शास्त्रार्थ करने का उनमें सामर्थ्य नहीं था, इसलिए ऊपर कैसे चले आते? उनके हंगामे की सूचना जिलाधीश महोदय तक पहुँच गई। सुरक्षा के लिए उन्होंने कुछ पुलिस-कर्मियों के साथ नगरकोतवाल को भेज दिया। कोतवाल सीधे महर्षि जी के निवास पर पहुँचे और महर्षि जी से इस हंगामे का कारण जानना चाहा। महर्षि जी ने कहा—"हम साधु हैं और अपने स्थान पर विराजमान हैं। हमारी किसी से कोई कटुता नहीं है। हंगामा करने वाले लोगों से ही आपको उसका कारण जानना चाहिए।"

कोतवाल साहब ने तुरन्त हरिगोपाल को बुलाया तो उसके पैरों तले की जमीन खिसक गई। वह डरता हुआ उनके सामने आ उपस्थित हुआ। कोतवाल साहब ने बिना कारण ही हंगामा खड़ा करने के लिए उसे खूब फटकार लगाई। इससे वह इतना भयभीत हुआ कि नगर छोड़ कर ही चला गया।

51. दयालु महर्षि दयानन्द

महर्षि जी सहृदयी और दयालु थे। वे किसी को कष्ट पहुँचाने की इच्छा नहीं रखते थे। प्रवचन के मध्य एक मद्यप ब्राह्मण ने उनके ऊपर जूता फेंक मारा। श्रद्धालु भक्त उखड़ गए, उन्होंने उसे पकड़ कर खूब धुनाई की। महर्षि जी ने स्वयं उसे छुड़ाया और बोले—"इसने अज्ञानवश ऐसा कर दिया है, इसलिए यह दया का पात्र है।" इस पर उसे छोड़ दिया गया।

52. महर्षि की प्रेरणा से पाठशाला की स्थापना

महर्षि की प्रेरणा से लाला वंशीलाल जी ने फर्रुखाबाद में एक पाठशाला के निर्माण का संकल्प लिया और उसे पूर्ण किया। पाठशाला में आर्ष पद्धति से शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। पचास छात्रों ने प्रवेश लिया। पाठशाला में शिक्षा निःशुल्क थी। छात्रावास की व्यवस्था थी। महाशय दुर्गादास जी उदारचित्त व्यक्ति थे। उन छात्रों के भोजनादि का सम्पूर्ण प्रबन्ध वे स्वयं करते थे।

53. पहलवान शर्मिन्दा हो गए

महर्षि जी सहनशील और सहृदयी सन्त थे। वे प्रतिकार की भावना से कभी ग्रस्त नहीं होते थे और न ही किसी पर क्रुद्ध होते थे। महर्षि जी के शारीरिक सामर्थ्य की चर्चा सुनकर कुछ पहलवान उनके निवास स्थान पर आ विराजे। उन्हें अपने बल पर पूरा भरोसा था। उस समय महर्षि जी गंगा में स्नान कर लौट रहे थे। पहलवानों की भावभंगिमा देखकर उन्हें उनका आशय समझते देर न लगी। उनके समीप आकर महर्षि जी ने स्नान के समय भीग गई अपनी कौपीन अच्छी तरह निचोड़ कर उनके हाथ में पकड़ा दी और बोले, ''इसे निचोड़ कर देखिए। एक बूँद पानी भी निकाल पाए तो फिर आपकी पहलवानी सार्थक हुई।''

पहलवानों ने बारी-बारी से उस कौपीन को निचोड़ने का पूरा यत्न किया, परन्तु एक भी बूँद न निकाल सके। तब महर्षि जी ने उसी कौपीन को दोबारा निचोड़ा तो उसमें से पानी निकल आया। अब वे शर्मिन्दा थे और महर्षि जी मुस्कुरा रहे थे।

54. मन्दिर-निर्माण की अपेक्षा समाज-सेवा के संस्थान श्रेष्ठ हैं

संवत् 1926 (सन् 1869 ई०) में स्वामी जी कानपुर पधारे और गंगातट पर विराजमान हो गए। यह स्थान भैरव-मन्दिर के समीप पड़ता था, अत: यह क्षेत्र भी भैरव-मन्दिर का क्षेत्र कहलाता था।

कानपुर के दो नगरश्रेष्ठी महर्षि जी के दर्शनार्थ गए। उन्होंने नगर में दो विशाल मन्दिर बनवाए थे। उन मन्दिरों की चर्चा उन्होंने महर्षि जी से की। महर्षि जी ने उनसे तुरन्त कहा—''महाशय, इन मन्दिरों में आपने इतना धन व्यय कर दिया है, इससे नगर-जनों को क्या लाभ हुआ? यदि आप इस धन से जन-कल्याण का कार्य करते तो उपकार होता। आपको देश-हित में धन व्यय करना चाहिए। समाज की निर्धन बेटियों के विवाह-संस्कार की व्यवस्था करनी चाहिए। निर्धन बच्चों के पढ़ने के लिए पाठशालाएँ निर्मित करानी चाहिए। कला-कौशल की उन्नति के लिए

अच्छी शिल्पशालाओं का निर्माण कराना चाहिए। ऐसा करने से देश-जाति का उत्थान होगा।''

55. मूर्तियाँ बेल-पत्र नहीं खातीं

महर्षि जी के दर्शनों से एक अनिर्वचनीय शान्ति दर्शकों को प्राप्त होती थी, अत: वैचारिक मतभेद वाले सज्जन भी उनके दर्शनार्थ उनके निवास पर आते रहते थे। एक दिन एक सज्जन आए। उनके हाथ की छोटी डलिया में शिव-मूर्ति पर चढ़ाने के लिए बेल-पत्रादि रखे हुए थे। अभिवादन करके जब वे सज्जन बैठ गए तो महर्षि जी ने पूछा ,''इस डलिया में क्या रखे हो?''

आगन्तुक ने कहा, ''इस डलिया में बेल-पत्र हैं महाराज!''

''इनका क्या करेंगे आप?'' महर्षि जी ने प्रश्न किया।

''पूजा अर्चना के लिए जा रहा हूँ शिव मन्दिर में। शिवजी महाराज की प्रतिमा पर इन्हें अर्पित करूँगा।''

महर्षि जी मुस्कुराए और बोले,''देखो, वह मूर्ति इन बेल-पत्रों को नहीं खाएगी। अगली सुबह झाड़ू लगाकर मन्दिर का पुजारी इन्हें बाहर फेंक देगा। कुछ समय बाद सड़ जाएँगे और प्रदूषण पैदा करेंगे। यदि आप इन पत्तों को किसी पशु को खिला दो तो उसकी कुछ भूख मिट सकती है।''

वे सज्जन चुपचाप चले गये।

56. स्नेहशील व उदारचेता महर्षि दयानन्द

कानपुर में गंगा-पुत्रों की काफी संख्या थी। गंगा मन्दिर में जो ब्राह्मण पूजा-पाठ करते थे, उन्हें गंगा-पुत्र कहकर सम्बोधित किए जाने की प्रवृत्ति वहाँ के निवासियों में थी। एक गंगा-पुत्र महर्षि जी के निवास से कुछ दूरी पर रहता था। उसका मार्ग महर्षि जी की कुटिया के सामने से होकर जाता था। उसकी नित्य-क्रियाओं में एक क्रिया यह भी थी कि जब भी वह महर्षि जी के निवास के सामने से आता-जाता तो महर्षि जी के सम्बन्ध

में अपशब्दों का प्रयोग करता। महर्षि जी को इस बात की जानकारी थी, परन्तु उन्होंने कभी आक्रोश प्रकट नहीं किया। महर्षि जी के पास श्रद्धालु जन नित्य ही फल और मिष्टान्नादि लेकर आते। महर्षि जी उन्हें वहाँ उपस्थित सज्जनों को वितरित कर देते। एक दिन मिष्टान्नादि सामग्री बाँटने के पश्चात् बची रह गई। उसी समय गंगा-पुत्र गालियाँ देता हुआ वहाँ से जा रहा था। महर्षि जी ने उसे बुलवाया और आदर-भाव से अपने समीप आसन पर बैठाया। इसके बाद अतिप्रेम से लड्डू और अन्य मिष्टान्न महर्षि जी ने उसे समर्पित किए और स्नेह से बोले—"इसी समय आप नित्य आया कीजिए। भक्त लोग बहुत-सी खाद्य सामग्री लाते हैं। आप भी उसमें से प्रसादरूप ग्रहण किया करें।"

इसके पश्चात् नित्य ही सन्ध्या समय वह गंगा-पुत्र महर्षि जी के पास आने लगा और महर्षि जी से प्रसाद पा सन्तुष्ट होता रहा। उसके मन में कभी-कभी यह शंका उठ खड़ी होती थी कि अवश्य ही किसी दिन महर्षि जी मेरे द्वारा दी जाती रही गालियों की चर्चा करेंगे, परन्तु महर्षि जी ने ऐसा न किया। कभी-कभी धर्म-चर्चा उसके साथ अवश्य किया करते। महर्षि जी के ऐसे स्नेह-समन्वित व्यवहार से उसे अपने किए पर पश्चात्ताप होने लगा और एक दिन ऐसा हुआ कि उसने महर्षि जी के चरण पकड़ अपनी त्रुटि को क्षमा कर देने की प्रार्थना उनसे की।

महर्षि जी ने कहा—"वत्स, हम इस प्रकार की बातों पर ध्यान नहीं देते। तुम भी उन बातों का विस्मरण कर दो और आनन्द से रहो।"

वह गंगा-भक्त महर्षि जी का भक्त हो गया।

57. वीतराग व तपस्वी महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द का जीवन त्याग और तप का पर्याय था। उन्हें संसार की कोई भी एषणा अपनी ओर आकर्षित कर पाने में असमर्थ थी। यद्यपि इस समय कानपुर के बहुत से समृद्ध जन उनके भक्तों में सम्मिलित हो गए थे और महर्षि जी के लिए हर सुख-सुविधा जुटाने हेतु तत्पर रहते थे, परन्तु महर्षि जी इन सब सुविधाओं से स्वयं को उदासीन रखते थे।

कानपुर के भैरवघाट पर महर्षि जी बिना किसी बिछौने के भूमि पर लेटकर ही रात्रि व्यतीत करते थे। वैसे तो वे कम समय ही निद्रा की गोद में विश्राम पाते थे, क्योंकि उनका अधिकतर समय साधना की मस्ती में ही बीतता था। सोने के समय सिरहाने के लिए वे दो ईंट रख लेते थे। सदयनारायण जी उनके परमभक्त हो गये थे। उन्होंने महर्षि जी से विनय कर पानी पीने के लिए एक लोटा और बाँधने के लिए एक कौपीन उन्हें दे दी थी।

वे उनसे समय-समय पर वहाँ बने रहने का आग्रह भी करते रहते थे, परन्तु उस दिन आश्चर्यजनित उदासी उनके चेहरे पर उतर आई, जिस दिन महर्षि जी के स्थान पर उनकी नई कौपीन और लोटा रखा उन्हें मिला, क्योंकि महर्षि जी उस भक्त को बिना बतलाए वहाँ से अन्यत्र प्रस्थान कर गए। पत्र-व्यवहार के लिए भी अगला पता किसी के पास नहीं था।

58. काशी का ऐतिहासिक शास्त्रार्थ

काशी में महर्षि जी के पधारने से पूर्व ही पं० शिवसहाय ने महाराजा काशी को उनके अद्वितीय विद्वान् होने की जानकारी दे दी थी। काशी के पण्डितों को भी महर्षि दयानन्द के विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों की सूचना थी। महर्षि दयानन्द ने संवत् 1926 (सन् 1869) में कार्तिक मास की बदी को काशी नगरी में प्रवेश किया। उन्होंने अपने निवास के लिए राजा माधोसिंह के बगीचे में अपना डेरा लगाया। यह बगीचा आनन्दोद्यान के नाम से प्रसिद्ध था। महर्षि जी ने प्रथम दिवस से ही वेद-विरुद्ध मूर्तिपूजा, भागवत, रामलीला और रासलीला आदि का खण्डन आरम्भ कर दिया। काशी नगर ने ऐसा निर्भीक सन्त पहली बार देखा था जो उसी के घर में बैठकर उसी की मान्यताओं पर बेधड़क चोट करे। काशी नगरी उस समय पौराणिक पण्डितों का गढ़ बना हुआ था। महर्षि जी के सत्यान्वेषण को लेकर काशी के पण्डितों में कानाफूसी आरम्भ हो गई थी। महर्षि जी के द्वारा दिए जा रहे प्रवचनों से उन्हें अपना धंधा चौपट हो जाने का भय था। महर्षि जी

जिस स्थान पर विराजमान थे, वहाँ से दुर्गा मन्दिर अधिक दूरी पर नहीं था। मन्दिर में आने-जाने वाले भक्त महर्षि जी के प्रवचन भी सुनते थे। प्रबुद्ध जन महर्षि जी के अकाट्य तर्कों, धाराप्रवाह सरल संस्कृत बोलने और उनके सौम्य स्वभाव के प्रभाव से स्वयं को बचा नहीं पाते थे। परिणाम यह हुआ कि मन्दिर में जाने वालों की संख्या तेजी से घटने के कारण मन्दिर की आय आधी रह गई। ऐसा होने से पण्डितों की चिन्ता बढ़ गई थी। महर्षि जी स्वयं भी वेद-विरुद्ध आचरण करने वाले पौराणिक जगत् के इस गढ़ को तोड़ना चाहते थे, इसलिए उन्होंने काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह को सूचना भिजवाई कि वे पण्डितों से चर्चा कर वेद-विहित ज्ञान का प्रचार करना चाहते हैं। महाराजा स्वयं काशी के पण्डितों के रंग में रँगे हुए थे। प्रतिदिन किये जा रहे भागवत पुराण और मूर्तिपूजा के खण्डन से उनकी नींद उड़ गई थी। उन्होंने तुरन्त काशी के दिग्गज पण्डितों को एकत्रित कर महर्षि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने की प्रेरणा दी। पण्डितगण, महर्षि दयानन्दजी की विद्वत्ता, प्रवचन-शैली और पुष्ट प्रमाणों से पूर्व ही भयभीत था, परन्तु काशी-नरेश के सामने वे स्वयं को अयोग्य ठहराना नहीं चाहते थे, इसलिए उन्होंने शास्त्रार्थ की तैयारी के लिए एक पखवाड़े का समय काशी नरेश से माँग लिया। महर्षि जी ने पूर्व ही यह स्पष्ट कर दिया था कि शास्त्रार्थ के समय वेद, वेदांगों, मनुस्मृति आदि 21 ग्रन्थों को ही प्रमाण के लिए स्वीकृति होगी। शेष आर्षग्रन्थ न होने के कारण प्रामाणिक नहीं हैं।

काशी नगर के अग्रणी पण्डितों की एक हंगामी बैठक हुई। शिवसहाय भी घर से लौटकर उसमें सम्मिलित हो गया था। बैठक में निश्चय हुआ कि यह पौराणिक जगत् के सम्मान का प्रश्न है। महर्षि दयानन्द को ऐसा पाठ पढ़ाया जाना चाहिए कि वह भविष्य में इस नगर की दिशा में अपना मुख तक न करे। विद्वत्ता में उससे पार पाना सम्भव नहीं है, अतः जैसे-तैसे उसे शास्त्रार्थ में एक बार पराजित किया ही जाना चाहिए। इस बैठक में दाक्षिणात्य बालशास्त्री जैसे अन्य कई चर्चित विद्वानों ने भाग लिया। राधामोहन तर्कवागीश, माधवाचार्य, शिवसहाय, ताराचरण, जयनारायण

तर्कवाचस्पति, स्वामी विशुद्धानन्द और अम्बिकादत्त आदि पौराणिक जगत् के धुरन्धर विद्वान् सम्मिलित थे। कुछ उद्दण्डों को भी उन्होंने अपने बीच सम्मिलित कर लिया। कार्तिक सुदी द्वादशी, दिन मंगलवार शास्त्रार्थ के लिए निश्चित हुआ। पूरे नगर में उत्सव जैसा वातावरण था। जहाँ देखो वहीं लोग इस शास्त्रार्थ की चर्चा करते मिलते। जिलाधीश महोदय को विधिवत् सूचना दे दी गई। नगर कोतवाल रघुनाथ सहाय महर्षि जी के अनन्य भक्त थे। शास्त्रार्थ के समय व्यवस्था करने का भार उन्हीं पर था।

इस धर्मयुद्ध में पूरी काशीनगरी एक ओर तथा महर्षि दयानन्द अकेले दूसरी ओर। महर्षि जी के समीप उनका भक्त बलदेव, पण्डित ज्योतिस्वरूप और जवाहरदास उपस्थित थे। पण्डित ज्योतिस्वरूप पौराणिक जगत् के उद्‌भट विद्वान् थे। पहली ही भेंट में वे महर्षि जी से इतने प्रभावित हुए कि उनके अनुयायी हो गए थे।

पण्डित शास्त्रार्थ की तैयारी में जुटे थे। उन्होंने उस दिन काशी की सभी पाठशालाओं का अवकाश रहने की घोषणा करवा दी थी। पण्डितों की ऐसी तैयारी देख बलदेव को अनिष्ट हो जाने की आशंकाओं ने घेर लिया। उसने महर्षि जी के सामने भी अपने मन का भय बता दिया। महर्षि जी ने उसे आश्वस्त किया और कहा कि मैं इस अवसर से निपट लेने की क्षमता रखता हूँ। आप लोग निश्चिन्त रहें। सत्य को उजागर करने में कभी किसी से भयभीत नहीं होना चाहिए।

शास्त्रार्थ की तिथि उपस्थित हुई। झगड़े की आशंका को ध्यान में रखते हुए कोतवाल महाशय ने एक कोठरी के समीप तीन आसन बिछवा दिए। एक आसन पर महर्षि जी विराजे, दूसरा आसन प्रतिपक्ष के सदस्य के लिए रखा गया और तीसरा काशी नरेश के लिए। यह भी घोषणा करवा दी कि प्रतिपक्ष की ओर से एक समय में एक ही सदस्य महर्षि जी से वार्तालाप करे।

पण्डितों की दक्षिणा आदि का प्रबन्ध महाराजा-काशी ने किया। उनको सभास्थल तक लाने के लिए पालकियों का प्रबन्ध भी उन्होंने किया। पालकियाँ शोभायात्रा की तरह नगर से होकर चलीं। सभी

पाठशालाओं के सभी छात्र अपने गुरुजनों की अगुवाई में जयघोष की ध्वनि करते हुए चले। काशी में उपस्थित सभी पौराणिक साधु-सन्त भी पंक्तिबद्ध होकर आनन्दोद्यान की ओर चले जा रहे थे। सभी अति उत्साही थे। श्रोताओं की भीड़ देखते ही बनती थी। एक बार ऐसा लगा जैसे पूरी काशी नगरी गतिमान् हो गयी हो।

महर्षि जी ने पण्डित ज्योतिस्वरूप और पण्डित जवाहरदास को अपने समीप बैठा लिया था। बैठते ही पण्डित ज्योतिस्वरूप ने घोषणा कर दी कि प्रथम शास्त्रार्थ मुझसे किया जाए। महर्षि जी के समीप पं० ज्योतिस्वरूप की उपस्थिति जानकर काशी के पण्डित समूह को अपने नीचे की धरती खिसकती हुई प्रतीत हुई। वे उनकी विद्वत्ता से परिचित थे। वे यह भी जानते थे कि पं० ज्योतिस्वरूप उन सब की पोलपट्टी जानते हैं, अतः उन्होंने काशी-नरेश को यह अवगत कराया कि यदि पं० ज्योतिस्वरूप महर्षि जी के समीप बना रहा तो हमारी जीत सम्भव नहीं है, अतः प्रथम उसे वहाँ से हटाना आवश्यक है। काशी नरेश ने अपने आदेश से पं० ज्योतिस्वरूप को सभा-स्थल से ही बाहर करा दिया। यद्यपि कोतवाल रघुनाथ सहाय ने महाराजा के इस आदेश का विरोध किया, परन्तु अति कोलाहल में उनकी बात किसी ने नहीं सुनी। एक समय में एक ही विद्वान् द्वारा चर्चा करने की व्यवस्था भी भंग हो गई। पण्डित लोगों ने अपनी पूर्व योजनानुसार महर्षि जी को चारों ओर से घेर लिया।

इतना होने के उपरान्त भी महर्षि दयानन्द अपने आसन पर अविचल विराजमान रहे। इन्हीं परिस्थितियों में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। कई हजार लोगों की उपस्थिति में सैकड़ों पौराणिक विद्वानों से अकेले महर्षि दयानन्द जूझ रहे थे। काशी-नरेश बराबर पण्डितों के सहयोग में जुटे थे। पूरा बल लगाने के पश्चात् भी पण्डित-समूह का कोई सदस्य वेद में मूर्ति-पूजा सिद्ध नहीं कर सका।

महर्षि जी द्वारा धर्म के लक्षण पूछते ही पौराणिक-मण्डली के अगुआ स्वामी विशुद्धानन्द जी की बोलती बन्द हो गई। उन्होंने केवल इतना कहा कि धर्म का केवल एक ही लक्षण है, तब महर्षि जी ने मनुस्मृति में वर्णित

धर्म के दश लक्षण उन्हें गिनवाए। इस पर बालशास्त्री ने कहा कि इस विषय पर हमसे वाद करिए, हमें धर्मशास्त्र की पूर्ण जानकारी है। तब महर्षि जी ने कहा कि यदि आपको धर्मशास्त्र की पूर्ण जानकारी है तो आप अधर्म के लक्षण समझाइये। महर्षि जी द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने पर बालशास्त्री बगलें झाँकने लगे।

कुछ देर सुस्ताने के पश्चात् विशुद्धानन्द जी ने महर्षि जी से प्रश्न किया—"अच्छा, आप यह बताइए कि वेदों का प्रकाश किस ईश्वर ने किया है।"

महर्षि जी ने उत्तर में कहा—"ईश्वर तो एक ही है। क्या आप बहुत से ईश्वर मानते हैं?"

महर्षि जी के इस प्रश्न पर वे घोर विपत्ति में फंस गए और बोले कि ईश्वर तो एक ही है।

इसके साथ ही पौराणिक जगत् महर्षि जी से पीछा छुड़ाने की जुगत में लग गया। धीरे-धीरे साँझ उतरने लगी थी। अन्धकार बढ़ता जा रहा था कि माधवाचार्य ने दो पुराने पृष्ठ निकाल कर महर्षि जी के सम्मुख रख दिए और कहा कि ये वेद के पृष्ठ हैं, आप पढ़कर देख लेवें। इनमें स्पष्ट लिखा है कि जब यज्ञ समाप्त हो जाए तो दसवें दिन पुराणों का पाठ करना चाहिए। अँधेरा होने के कारण अक्षर स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहे थे। महर्षि जी उन्हें ध्यान से देख रहे थे कि तभी विशुद्धानन्द जी यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि सन्ध्या हो गई है। उनके उठते ही काशी-नरेश भी उठ खड़े हुए। पूर्व निर्धारित षड्यन्त्र के अनुसार हुड़दंगियों ने अपना काम शुरू कर दिया। उन्होंने कोलाहल मचा दिया। काशी-नरेश ने तालियाँ बजाईं। उन्हें देखकर पूरे जमघट में तालियों की गड़गड़ाहट हो गई। सभी जय घोष करते हुए उठ खड़े हुए। दंगाइयों ने हुड़दंग आरम्भ कर दिया। महर्षि जी के ऊपर ईंट-पत्थर फेंके। गोबर और जूते तक उनके ऊपर उछाले गए, परन्तु वाह रे महर्षि दयानन्द! यह जानते हुए भी कि पण्डित समुदाय अनीति पर चल पड़ा है, तूने उनके आचरण के विरोध में एक शब्द भी न कहा।

कोतवाल साहब को यह सब अच्छा न लगा। उन्होंने काशी-नरेश से इस बारे में अपना विरोध प्रकट किया। काशी-नरेश ने कहा कि हमारी अपनी मान्यताएँ हैं। मूर्तिपूजा हमारा धर्म है, इसलिए विरोधी को जैसे भी हो परास्त करना ही चाहिए।

सभा में बहुत से विचारवान् लोग भी थे। उन्होंने पण्डितों की उद्दण्डता पर क्षोभ प्रकट किया और उनकी भर्त्सना की।

काशी के ब्राह्मणों ने पूरे नगर में अपनी जय की घोषणा कर दी, परन्तु तब देश के विभिन्न समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं (रुहेलखण्ड समाचार-पत्र, ज्ञान-प्रदायिनी पत्रिका लाहौर, प्रत्नकर-नन्दिनी पत्रिका, हिन्दू पेट्रियट आदि) में महर्षि जी की विजय विस्तार से छपी तो काशी के पौराणिक पण्डितों के तथाकथित ज्ञान एवं विद्वत्ता की पोल खुल गई।

59. वैर-भाव से परे

महर्षि जी जहाँ पुराणों के गप्पों का खण्डन करते थे, वहीं कुरान और बाइबिल के अप्रासंगिक प्रसंगों का भी विरोध करते। ऐसा करने से काशी के मुसलमान भी महर्षि जी से प्रसन्न नहीं थे। वे भी ऐसे अवसर की खोज में रहते थे कि कब महर्षि दयानन्द को आघात पहुँचाया जाये। महर्षि जी नित्य ही प्रातः-सायं गंगा-किनारे आसन जमा, प्रभु-चिन्तन किया करते थे। मुसलमानों को यह ज्ञात हो गया। उन्होंने उन्हें समाधि-अवस्था में उठाकर गंगा में फेंक देने की योजना बनाई। एक दिन सायंकाल कुछ बलिष्ठ मुसलमान गंगा तट पर पहुँच गए। महर्षि जी को ध्यान-मग्न देखकर प्रसन्न हुए। उनमें से दो व्यक्तियों ने महर्षि जी की दोनों भुजाओं की बगल में हाथ फंसा कर उन्हें उठा लिया और गंगा की धारा में ले गए। महर्षि जी उनका आशय समझ गए थे। उन्होंने जैसे ही महर्षि जी को दम लगा कर धारा में फेंकना चाहा तो महर्षि जी ने अपनी भुजाएँ शरीर से बलपूर्वक सटा लीं। उन दोनों के हाथ दब गए और वे महर्षि जी के साथ ही गंगा की धारा में बहने लगे। जब उन्हें लगा कि अब पानी में डूबने से नहीं बचेंगे तो बचने के लिए चिल्लाने लगे। महर्षि जी ने कृपापूर्वक

अपने हाथ ढीले कर दिए, तब वे किसी तरह पानी से बाहर आ पाए। महर्षि जी ने प्राण खींचे और डुबकी लगाकर दूर जा निकले।

60. मैं खुद ही बलि चढ़ा जा रहा हूँ

काशीवास के उपरान्त महर्षि जी प्रयाग कुम्भ में होते हुए मिर्जापुर आकर ठहर गए। नगर का एक सेठ महर्षि जी के पुराण-खण्डन से बड़ा कुपित था। उन्हीं दिनों मन्त्र शास्त्री नाम का एक ओझा मिर्जापुर में आकर ठहर गया। उसने नगर में प्रचार किया कि उसके पास ऐसी सिद्धियाँ हैं कि विधिपूर्वक उनके पुरश्चरण से किसी भी मनुष्य के शरीर का अन्त सम्भव है। सेठ को जब उस शास्त्री के सम्बन्ध में जानकारी मिली तो उसने मन्त्र शास्त्री को बुला कर कहा—''आप धन की चिन्ता न करना, परन्तु दयानन्द जीवित नहीं बचना चाहिए। आप अपनी सिद्धियाँ आरम्भ कर दें।''

मन्त्र शास्त्री ने पुरश्चरण आरम्भ कर दिया और सेठ को विश्वास दिलाया कि इस सिद्धि के पूर्ण होने पर 21 दिन के उपरान्त महर्षि दयानन्द के प्राणों का अन्त हो जाएगा। इस सिद्धि के लिए बलि देने की व्यवस्था करनी होगी। सेठ ने अपनी स्वीकृति दे दी।

महर्षि जी को उनके शुभचिन्तकों ने जब यह सूचना दी तो वे मुस्कराये और बोले कि—मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। इन्हीं अन्धविश्वासों से मैं समाज को बचाना चाहता हूँ। इस अँधेरे से ये भोले लोग पता नहीं कब निकल सकेंगे ?

इसे दैवयोग ही कहिए कि इधर तो मन्त्र शास्त्री सिद्धि के पुरश्चरण में लगा हुआ था और उधर वह सेठ रोगग्रस्त होता चला गया। उसके गले में भयंकर फोड़ा निकल आया था। ज्यों-ज्यों वह उस फोड़े का उपचार कराता त्यों-त्यों उसकी पीड़ा बढ़ती जाती। उसने मन्त्र शास्त्री को बुलाकर बड़ी कठिनाई से कहा,''कृपया पुरश्चरण बन्द कर दें।''

शास्त्री बोले,''सिद्धि समीप है। बलि के देते ही दयानन्द का सिर धड़ से अलग हो जाएगा। आप बलि की व्यवस्था कर दीजिए।''

सेठ ने कहा—"मैं खुद ही बलि चढ़ा जा रहा हूँ। मुझे अपने जीवन की चिन्ता है। मैं ऐसी सिद्धि का पुरश्चरण नहीं चाहता। आप उसे तुरन्त बन्द कर दें।"

61. सिंह-सी दहाड़

उद्दण्ड लोग जब उद्दण्डता करने से नहीं रुकते थे तो महर्षि जी ऊँची आवाज में दहाड़ते थे। वह दहाड़ इतनी भयंकर होती थी कि सामने वाला व्यक्ति पसीने-पसीने हो जाता था।

छोटूगिरि गोसाईं बड़ा उद्दण्ड था। वह बूढ़े महादेव मन्दिर का पुजारी था। एक दिन सैकड़ों आदमियों को लेकर महर्षि जी के स्थान पर आ गया और गालियाँ देने लगा, फिर महर्षि जी के समीप बैठकर उनकी वस्तुओं को छेड़ने लगा। महर्षि जी ने कहा—"जो वस्तु तुम्हें चाहिए, उसे ले लो। व्यर्थ में बिखेरो मत।" वह माना नहीं। उसने कहा—"तुम मूर्तियों का खूब खण्डन करते हो। आज हम तुम्हें बता देंगे कि खण्डन कैसे करते हैं। हम तुम्हारे गुरु हैं।"

महर्षि जी उठ खड़े हुए और ऊँची आवाज से सेवक को कहा, "कोठरी का दरवाजा बन्द कर दो। मैं देखता हूँ इस पाखण्डी को।"

महर्षि जी का रौद्र रूप देखकर छोटूगिरि सारी हेकड़ी भूल गया।

उसके साथ आए जगन्नाथ मालवीय ने महर्षि जी से क्षमा-याचना की और चुपचाप वहाँ से खिसक गए।

62. विनम्रता व क्षमा की प्रतिमूर्ति

काशी-शास्त्रार्थ में वहाँ के पौराणिक पण्डितों की पोल खुल गई थी। काशी-नरेश उस समय के अपने आचरण से अति लज्जित थे। उनके द्वारा एक सत्यनिष्ठ संन्यासी का अनादर हुआ। वे उसका प्रायश्चित्त करना चाहते थे।

मिर्जापुर से चलकर महर्षि जी जब पुनः काशी पहुँचे तो उन्होंने राजा माधोसिंह के उद्यान में निवास किया। उनके काशी आगमन की

सूचना जब काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह को हुई तो उन्होंने अपना सन्देशवाहक भेजकर महर्षि जी के दर्शनों की इच्छा व्यक्त की तथा उन्हें लिवा लाने के लिए अपना वाहन भेज दिया। महर्षि जी ने पूर्व घटना का स्मरण व विचार किये बिना काशी-नरेश के निवेदन को स्वीकार कर लिया। महर्षि जी के आने पर नरेश ने उठकर उनका अभिवादन किया और आदरपूर्वक स्वर्ण-सिंहासन पर बैठाया। उन्हें पुष्पहार अर्पित कर उनके समीप ही स्वयं रजत-सिंहासन पर बैठे। इसके पश्चात् उन्होंने करबद्ध हो काशी-शास्त्रार्थ के समय हुई त्रुटि के लिए क्षमा-याचना की।

महर्षि जी ने विनम्र भाव से कहा—"हम साधु हैं। हमारे मन में दुर्भावना कभी वास नहीं करती। ऐसी घटनाओं को हम कभी स्मरण नहीं करते। सत्य उपदेश करना हमारा कर्त्तव्य है। जन-सेवा करना हमारा उद्देश्य है। इस रास्ते में जो कठिनाइयाँ आती हैं, हम उन्हें सहर्ष झेलते हैं।"

काशी-नरेश महर्षि जी की वार्ता से आश्वस्त हो गए। काफी देर धर्म-चर्चा करते रहे। जब महर्षि जी विदा होने लगे तो काशी नरेश ने महर्षि जी को बहुत सी रजत-मुद्राएँ और भोज्य पदार्थ देकर आदर सहित विदा किया।

63. अनधिकृत वस्तु का ग्रहण चोरी

काशीवास के पश्चात् स्वामी जी कासगंज में आकर विराजे। प्रथम उन्होंने वहाँ अपने द्वारा स्थापित की हुई पाठशाला को देखा और व्यवस्थापकों को आवश्यक निर्देश दिए। उनकी इच्छा थी कि छात्र राष्ट्र के सुयोग्य नागरिक बनकर निकलें। वे निर्मल मन वाले और कर्त्तव्यनिष्ठ हों। छल-कपट से दूर उनका जीवन आदर्श होना चाहिए।

कासगंज में महर्षि जी का निवास जिस स्थान पर था, वहाँ स्नानादि की सुव्यवस्था नहीं थी, इसलिए वे समीप के उद्यान में स्नान के लिए जाया करते थे। उन दिनों पण्डित रामप्रसाद महर्षि जी के साथ रहता था। स्नान के समय वह महर्षि जी के साथ ही उद्यान में जाता। उस उद्यान में

आम के वृक्ष थे। एक दिन जब महर्षि जी स्नान के लिए उस उद्यान में जा रहे थे तो एक पका आम का फल राह में पड़ा हुआ था। स्वामी जी उसके समीप से होकर चले गए। रामप्रसाद से रहा नहीं गया। उसने आम का वह फल उठा लिया। उठाते हुए महर्षि जी की दृष्टि रामप्रसाद पर चली गई थी। उन्होंने उसे प्यार से समझाया—''रामप्रसाद, यह बगीचा अपना नहीं है। इसकी किसी भी वस्तु पर हमारा अधिकार नहीं है और बिना अधिकार किसी भी वस्तु का ग्रहण चोरी समझना चाहिए। यह आम उठाकर तुमने ठीक नहीं किया।'' रामप्रसाद बहुत शर्मिन्दा हुआ।

64. अपने बल पर भरोसा

महर्षि दयानन्द योगी थे, साधक थे और विलक्षण संयमी थे। अपने अतुलित बल का उन्हें आभास भी था, इसलिए असामान्य परिस्थितियों में भी वे सामान्य बने रहते थे। कासगंज (उ०प्र०) में उन दिनों एक साँड का बड़ा भय था। वह अपने सामने आये व्यक्ति को मारने के लिए उसके पीछे दौड़ता था। एक दिन बाजार में जाते समय महर्षि जी से उसका सामना हो गया। उसे देखते ही लोग बचने के लिए इधर-उधर भाग खड़े हुए। वे लोग महर्षि जी से भी रास्ते से हट जाने का आग्रह कर रहे थे, परन्तु महर्षि जी निश्चिन्त हुए बढ़ते जा रहे थे। उनकी दृष्टि साँड के चेहरे पर टिकी थी। वे जब साँड के समीप पहुँचे तो वह साँड उनके बराबर से चुपचाप निकल गया। साँड के चले जाने के बाद लोगों ने उनसे कहा—''महर्षि जी, यह साँड दौड़कर आदमियों को मारता है। पता नहीं क्यों आपके समीप से चुपचाप निकल गया। यदि यह आपको मारने दौड़ पड़ता तो फिर आप क्या करते? ऐसे भयंकर पशु से बचकर ही रहना चाहिए।''

महर्षि जी मुस्कुराए और बोले—''यदि वह साँड मुझे मारने के लिए दौड़ता तो मैं उसके सींग पकड़ कर उसे पीछे ढकेल देता।''

फिर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया।

65. राजपूतों को यज्ञोपवीत दिया

जब ठाकुर मुकुन्दसिंह को महर्षि जी के कासगंज पधारने की सूचना मिली तो वे दौड़ते हुए वहाँ पहुँच गए। विनम्रतापूर्वक श्री-चरणों में अभिवादन किया और प्रार्थना कर आदर सहित उन्हें छलेसर ले आए। महर्षि जी गाँव के समीप कालिन्दी नदी के तट पर पहुँचे तो गाँववासी बहुत से सज्जन उन्हें लिवाने वहीं गए और पुष्पमालाओं से उनका स्वागत कर गाँव लिवा लाए। आग्रह करने पर भी महर्षि जी वाहन में नहीं बैठे, उनके साथ गाँव तक पदयात्रा की।

महर्षि जी जब गाँव के गलियारे से गुजरे तो गाँववासियों ने छत पर चढ़ कर उनका स्वागत किया। उनके दर्शन कर स्वयं को धन्य समझा। ठाकुर मुकुन्दसिंह ने उनके ठहरने का प्रबन्ध पश्चिम की ओर स्थित उद्यान में कर दिया। उनके निवास के सामने एक विस्तृत चबूतरे का निर्माण कराया जहाँ बैठकर नित्य-प्रति महर्षि जी गाँव-वासियों को प्रवचन किया करते थे। राजपूतों के परिवारों में यज्ञोपवीत का ग्रहण करना नया-सा कार्य था। इससे पूर्व ब्राह्मण उन्हें यज्ञोपवीत ग्रहण करने के लिए प्रेरित ही नहीं करते थे। महर्षि जी ने उन्हें यज्ञोपवीत का महत्त्व समझाते हुए उसे ग्रहण करने की प्रेरणा दी। महर्षि जी की प्रेरणा से उन परिवारों के सभी सदस्यों ने यज्ञोपवीत धारण कर गायत्री का जाप करना भी उनसे सीख लिया। गाँव में उत्सव जैसा वातावरण था। उनके सम्बन्धी भी दूर-दूर से आकर यज्ञोपवीत धारण कर सुपथ पर चलने की प्रतिज्ञा करते थे। महर्षि जी भेद-भावना से कभी ग्रस्त नहीं रहे। सामान्य जन से लेकर राजपरिवारों के सदस्यों के साथ उनका सम व्यवहार था।

गाँव के ठाकुरों ने महर्षि जी के लिए भोजन की उत्तम व्यवस्था कर दी थी। महर्षि जी प्रथम भोजन ले आने वाले व्यक्ति का ही भोजन ग्रहण कर लेते थे। विशेष व्यक्ति से भोजन का आग्रह उन्होंने कभी नहीं किया।

66. निर्धन किसान की रोटियाँ

एक दिन महर्षि जी चबूतरे पर बैठे हुए थे। यद्यपि अभी भोजन के

समय में विलम्ब था, परन्तु एक निर्धन किसान अपने खेत को जा रहा था। दोपहर के भोजन के लिए मक्के की रोटियाँ उसके साथ थीं। महर्षि जी के दर्शन कर उसके हृदय में श्रद्धाभाव जागृत हुआ। वह महर्षि जी के समीप गया। चरण स्पर्श कर संकोच सहित उनसे विनम्र प्रार्थना की—''महाराज, यदि मेरे घर का अन्न ग्रहण कर लेंगे तो मैं धन्य हो जाऊँगा।''

महर्षि जी के पास उस समय कोई पात्र नहीं था, न ही उस किसान के पास था। स्वामी जी ने भोजन कर लेने की हाँ भी भर ली। किसान ने छलने की गाँठ खोल कर महर्षि जी के सामने कर दी। महर्षि जी ने हाथ पर रखकर स्वाद के साथ रोटियाँ खाईं और उस निर्धन किसान को आशीर्वाद दिया। वह गद्‌गद् हो गया। उसने फिर महर्षि जी के चरण-स्पर्श किए और अपने खेत की ओर चला गया।

महर्षि जी के आग्रह पर गाँव-वासियों ने एक वैदिक पाठशाला का निर्माण करवा दिया।

67. महर्षि जी का कर्णवास में पुनः पदार्पण

छलेसर के श्रद्धालुओं से विदा लेकर महर्षि फर्रुखाबाद की पाठशाला का प्रबन्ध देखते हुए अनूपशहर आकर ठहरे। कुछ दिन तक वहाँ धर्मोपदेश किया और शरत्पूर्णिमा के अवसर पर कर्णवास जा पधारे।

महर्षि कर्णवास आकर अपना वचनामृत बाँटते रहते थे। यहाँ के ठाकुरों पर दिनोंदिन उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा था। कर्णवास के सब ठाकुर महर्षि जी के भक्त हो गए थे। कर्णवास के मौजी बाबा भी महर्षि जी के अनन्य भक्त हो गए थे। वे पक्के घाट पर रहते थे। निरे निरभिमानी, संयमी और फक्कड़ फकीर थे मौजी बाबा। अक्सर मौन रहते थे। कर्णवास के वैरागियों और साधु-सन्तों में उनका भरपूर सम्मान था। वे नेत्रहीन थे। गंगा के किनारे बैठकर वे महर्षि दयानन्द से घण्टों धर्म-चर्चा किया करते थे।

68. राव कर्णसिंह लज्जित हुआ और भयभीत भी

महर्षि जी के कर्णवास के आगमन की सूचना राव कर्णसिंह को मिल गई। इसी स्थान पर गंगा के मेले में वह महर्षि जी के सामने अति

लज्जित हुआ था, अतः विद्वेष की अग्नि में अभी तक तप रहा था। महर्षि जी से हुई अपनी दुर्गति का दंश उसे चैन से नहीं बैठने दे रहा था। राव कर्णसिंह अपने गांव बरौली से चल कर कर्णवास आ गया और महर्षि जी के साथ ही आकर अपना डेरा डाल दिया। इस बार उसके साथ वेश्याएँ भी थीं।

राव कर्णसिंह ने कर्णवास में रहते हुए महर्षि जी के प्राण हर लेने की योजनाएँ बनानी आरम्भ कर दीं। महर्षि जी ने अपने प्रवचनों में अवतारवाद और प्रतिमा-पूजन का खण्डन किया। इससे कर्णसिंह और कुपित हो गया परन्तु महर्षि जी के सम्मुख स्वयं उपस्थित होने का साहस न जुटा सका। उसने धर्म पर संकट की दुहाई देकर नगर के वैरागियों को भड़काया। वे अर्धरात्रि को महर्षि जी पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गए। उनकी इस योजना की जानकारी मौजी बाबा को हो गई। वे तुरन्त वैरागियों के मुखिया के पास गए और उन्हें खूब डाँटा, ऐसे महात्मा कभी-कभी जन्म लेते हैं और तुम उनके प्राण लेने पर तुले हो। यह सुनकर उन्होंने अपना विचार बदल दिया, इससे राव कर्णसिंह को बड़ा आघात लगा। उसकी स्थिति उन्मत्त जैसी हो गई। उसने उसी रात अपने तीन सेवकों को तलवार लेकर महर्षि जी का अन्त कर देने के लिए भेजा।

अर्धरात्रि का समय। महर्षि जी की कुटिया के आस-पास झाड़-झंखाड़ और रात्रि का गम्भीर सन्नाटा। हत्या करना सेवकों का धन्धा नहीं था, फिर महर्षि दयानन्द जैसे सन्त पर रात के अँधेरे में धोखे से प्राण-घातक चोट करने के विचारमात्र से ही उनके हृदय काँपने लगे। उनके कदम आगे बढ़ने से रुक गए। उनका उत्साह भंग हो गया था। महर्षि दयानन्द उस समय साधना में रत थे। सेवकों को घबराहट ने धर दबाया। वे चुपचाप वापस लौट गए। उनको वापस लौटे देख राव कर्णसिंह का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया। उसने सेवकों को बुरी तरह फटकारा। अब तक महर्षि जी साधना से विरत हो गए थे। उन्होंने उसकी आवाज सुन ली। वे सावधान हो गए।

तीनों सेवक पुनः हाथ में खड्ग लिए महर्षि जी के आवास की ओर

चल दिए। पूरा साहस बटोर वे महर्षि जी की कुटिया तक पहुँच भी गए, परन्तु उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उनके हाथ-पाँवों की गति रुक गई है। वे फिर लौट आये। अबकी बार उन्हें वापस लौटा देख राव साहब अपना सन्तुलन खो बैठे। ऊँची आवाज में उसने सेवकों को गालियाँ सुनाईं और दण्ड के लिए सचेत किया। सेवक सहम गए। परिवार की सुरक्षा और जीविका का प्रश्न था। वे फिर बढ़ चले। महर्षि जी कुटिया के बाहर घूम रहे थे। तीनों सेवक साहस कर आगे बढ़ रहे थे। उनके पैर काँप रहे थे। महर्षि जी ने उन्हें अपनी ओर आता देख बलपूर्वक दहाड़ लगाई। उनकी इस दहाड़ से रात्रि की शान्ति तो भंग हुई ही, सेवक भी अचानक ऐसी भयंकर आवाज सुन लड़खड़ा कर गिर गए और उन्हें लगा कि जैसे वे अचेत हो गए हैं। महर्षि जी की आवाज से उनके समीप ही सोया उनका भक्त ठाकुर कैथल सिंह जाग गया था। उसे सारी परिस्थिति समझते देर नहीं लगी। वह दौड़ता हुआ नगर में चला गया और घटना की जानकारी दी, तभी सभी राजपूत ठाकुर कृष्णसिंह की अगुवाई में राव कर्णसिंह के डेरे पर जा पहुँचे और उसे धिक्कारते हुए कहा—"रात के अँधेरे में एक सन्त पर आक्रमण करते तुझे लज्जा नहीं आई। अगर साहस है तो तम्बू से बाहर निकल। देख, हम तुझे अभी ठिकाने लगाते हैं कि नहीं ?"

भय का मारा वह अन्दर ही छिपा बैठा रहा।

अगले दिन इस घटना की चर्चा पूरे नगर में फैल गई। राजघाट पर ठहरे पंजाबी सेना के जवान तुरंत अपने शस्त्रों सहित महर्षि जी की सेवा में आ उपस्थित हुए और राव कर्णसिंह को पाठ पढ़ाने के लिए उनका आदेश चाहा। महर्षि जी ने स्नेह-भाव से समझा कर उन्हें वापस भेज दिया। अपने उग्र विरोध की जानकारी जब राव कर्णसिंह को हुई तो उसने दबे पाँव कर्णवास छोड़ दिया। कहते हैं कि वह इतना भयभीत हुआ कि बरौली वापिस पहुँचते ही उसने चारपाई पकड़ ली।

69. मुझे बिरादरी से निकाले जाने का भय नहीं

निरन्तर योग-साधना, सत्य के प्रतिपादन और जनसेवा से महर्षि जी

का हृदय वाष्पीकृत जल-सा निर्मल हो गया। समीपस्थ जनों के हृदय की बातें अक्सर उनके मन में आ जाया करती थीं। गृहस्थ जनों को कष्ट न हो, इसलिए महर्षि जी ने अपने साथ पाचक रखना आरम्भ कर दिया था। एक दिन जब महर्षि जी स्नानार्थ गए हुए थे, तब पाचक का चाचा उससे मिलने आ गया। कुशल समाचार के पश्चात् उसने अपने भतीजे से कहा—''महर्षि जी कहाँ बैठकर भोजन करते हैं ?''

''रसोई में,'' उसने कहा।

''और उनके पश्चात् तुम भोजन करते हो ?'' चाचा ने अगला प्रश्न किया।

''हाँ।'' उसने बताया।

''इसका मतलब है रसोई का झूठा हो जाना। तुम्हें झूठा भोजन करना पड़ता है। बिरादरी को पता लग गया तो ?'' इस पर पाचक ने तो कुछ नहीं कहा, परन्तु चाचा ने उसे समझाया—''महर्षि जी को भोजन कराने से पूर्व चौके में एक रेखा खींच दिया करो और उन्हें उस रेखा से बाहर ही खाना दिया करो। इससे चौका पवित्र बना रहेगा।''

महर्षि जी को उनकी इस वार्ता की भनक लग गई। वे स्नान करके लौटे तो रसोई से बाहर ही भोजन करने के लिए बैठ गए। रसोइए ने नित्य की भाँति चौके में बैठकर भोजन करने का आग्रह किया तो महर्षि जी बोले—''ऐसा करने से रसोई जूठी नहीं होगी और तुम्हें बिरादरी से निकाले जाने का भय भी नहीं सतायेगा। मैं तो संन्यासी हूँ। मुझे बिरादरी से निकाले जाने का भय नहीं है।''

पाचक ने विनम्र भाव से कहा—''चाचा रूढ़िवादी विचारों के हैं। आपके समीप रहने से मेरा अन्धविश्वास जाता रहा। मैं ऐसा कभी नहीं सोचता हूँ।''

70. हम बाबा आदम और माता हव्वा के जमाने के हैं

पटना से स्वामी जी ने मुंगेर की ओर प्रस्थान किया। मुंगेर को जाने के लिए जमालपुर जंक्शन पर गाड़ी बदलनी पड़ती थी। महर्षि जी जमालपुर

स्टेशन पर उतरे तो उन्हें जानकारी मिली कि मुंगेर जाने वाली गाड़ी के आने में एक घण्टे का विलम्ब है। महर्षि जी तब तक के लिए वहीं प्लेटफार्म पर घूमने लगे। वे केवल कौपीन पहने हुए थे। इस स्थिति में उन्हें एक अंग्रेज इंजीनियर दम्पती ने देखा तो उन्होंने स्टेशन मास्टर के पास जाकर कहा—''इस साधु को हटाइए। यह यहाँ नंगा ही घूम रहा है। कितना भद्दा लगता है।''

स्टेशन मास्टर महर्षि जी के नाम से परिचित था। वह उनके पास गया, विनम्रभाव से उन्हें अभिवादन किया और उनसे प्रार्थना की—''मुंगेर जाने वाली गाड़ी में अभी बड़ा विलम्ब है, तब तक बैठकर विश्राम कर लीजिए।''

महर्षि जी मुस्कुराए और बोले—''जिन सज्जन ने आपको हमारे पास भेजा है, उन्हें जाकर कहना कि हम बाबा आदम और माता हव्वा के जमाने के हैं, जो अदन के बगीचे में बिल्कुल नंगे घूमते थे और फिर भी लज्जित नहीं होते थे।'' स्टेशन मास्टर ऋषि की बात सुनकर दंग रह गया। वह सीधा अपने कार्यालय में जाकर कार्यरत हो गया। महर्षि जी पूर्व की भाँति ही प्लेटफार्म पर घूमते रहे। अँग्रेज दम्पती पुनः स्टेशन मास्टर के कार्यालय में गए और उनसे कहा—''वह साधु उसी प्रकार घूम रहा है। उसे हटाइए।'' स्टेशन मास्टर ने उनसे कहा—''देखिए साहब, वह कोई भिखमंगा तो है नहीं, जिसे मैं हाथ पकड़ कर स्टेशन से बाहर कर दूँ। वे देश के प्रसिद्ध सुधारक सन्त दयानन्द हैं।''

''अच्छा! ये ही हैं दयानन्द स्वामी।'' आश्चर्य से उनका मुँह खुला रह गया। वे तुरन्त महर्षि जी के समीप पहुंचे और अभिवादन के पश्चात् बोले—''बहुत समय से आपके दर्शन करने की इच्छा थी। आज अचानक पूरी हो गई।'' गाड़ी आने तक वह अँग्रेज इंजीनियर महर्षि जी से वार्ता करता रहा।

71. केशवचन्द्र सेन से भेंट

महर्षि जी मुंगेर से भागलपुर होते हुए सन् 1873 में कलकत्ता चले

गये। वहाँ वे सुरेन्द्रमोहन जी के प्रमोदकानन में ठहरे। उन दिनों ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन कलकत्ता में नहीं थे। महर्षि जी की ज्ञान-गरिमा की चर्चा उन्होंने सुन रखी थी। यात्रा से लौटते ही वे महर्षि जी से भेंट करने के लिए पहुँच गए। काफी समय तक परस्पर ज्ञान-चर्चा होती रही। महर्षि जी की विद्वत्ता और विनम्र व्यवहार पर श्री सेन मुग्ध हो गए। परस्पर परिचय की औपचारिकता का अवसर न बन पाया। चर्चा के मध्य ही श्री केशवचन्द्र सेन ने महर्षि जी से पूछा, ''क्या आप कभी केशवचन्द्र सेन से मिले हैं?''

महर्षि जी ने तुरन्त कहा—''हाँ, मिला हूँ।''

श्रीयुत् सेन ने बताया—''वे तो कलकत्ता में नहीं थे।''

महर्षि जी मुस्कुराए और बोले—''अभी मेरे सामने बैठे हुए हैं।''

श्रीयुत् सेन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—''मैंने तो अपना परिचय नहीं दिया, फिर आपने कैसे जाना कि मैं ही केशवचन्द्र सेन हूँ?''

महर्षि जी ने सहज भाव से उत्तर दिया—''इतनी सूझ-बूझ के साथ यहाँ और कोई वार्ता नहीं कर सकता।''

श्रीयुत् केशवचन्द्र सेन महर्षि जी के स्नेह में आबद्ध हो गए। उन्होंने आत्मीय भाव से कहा, यदि आप वेदों के पाण्डित्य के साथ अंग्रेजी का भी ज्ञान रखते तो इंग्लैण्ड की यात्रा में आपका साथ मेरा सौभाग्य होता। महर्षि जी हँस पड़े और बोले—''दु:ख है कि ब्रह्मसमाज का नेता संस्कृत नहीं जानता। वह अपने देश की जनता को उस भाषा में उपदेश देता है, जिसे वह नहीं जानती।''

इस समय तक महर्षि जी सरल संस्कृत में ही प्रवचन देते थे। श्री केशवचन्द्र सेन ने उनसे विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि सभी श्रोता संस्कृत नहीं जानते, अत: आपके उपदेशों से वंचित रह जाते हैं। अच्छा हो, यदि आप हिन्दी भाषा में अपने प्रवचन दिया करें। महर्षि जी ने उनका आग्रह तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसी समय केशवचन्द्र सेन जी ने यह भी

निवेदन किया कि अब आप सभाओं में उपदेश करते हैं; दिगम्बर अवस्था में रहना शोभा नहीं देता। महर्षि जी ने उनके इस परामर्श को भी तुरन्त स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व महर्षि जी एक लँगोटी के अतिरिक्त अन्य वस्त्र नहीं पहनते थे। कभी-कभी कौपीन धारण कर लेते थे।

श्रीयुत् केशवचन्द्र सेन महर्षि जी के अन्तरंग हो गए थे। उन्होंने अपने निवास पर महर्षि जी के प्रवचनों की व्यवस्था की और ब्रह्मसमाज के वार्षिकोत्सव पर भी महर्षि जी को सम्मान सहित आमन्त्रित किया।

महर्षि जी की ख्याति सुनकर श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी प्रमोद-कानन में उनके दर्शनार्थ पधारे। निरन्तर तीन मास तक महर्षि जी कलकत्ता-वासियों के लिए वेदामृत की वर्षा करते रहे।

कलकत्ता से प्रस्थान के पश्चात् महर्षि जी हुगली, भागलपुर और पटना में धर्म प्रचार करते हुए जेठ सुदी संवत् 1930 को छपरा पधारे।

72. सत्यासत्य जानते हैं, पर मानते नहीं

इन दिनों पं० हेमचन्द्र महर्षि जी से आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन कर रहे थे। महर्षि जी के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी। एक दिन जिज्ञासावश उन्होंने महर्षि जी से प्रश्न किया—"स्वामी जी, बहुत से विद्वान् आपसे शास्त्रार्थ करने आते हैं। क्या वे सभी सत्यासत्य का निर्णय करने में असमर्थ हैं?"

महर्षि जी हंस पड़े। बोले—"वे लोग सत्यासत्य को जानते हैं, परन्तु मानते नहीं हैं। मान लेने से उन्हें अपना धन्धा चौपट हो जाने का भय है। जो मान लेते हैं, वे उसके प्रचार में लग जाते हैं।"

73. और छप्पर बन गया

छपरा से चलकर महर्षि जी मिर्जापुर, कानपुर, और फर्रुखाबाद होते हुए पौष बदी 6 संवत् 1930 (सन् 1873) को कासगंज की वैदिक पाठशाला में पहुँच गए। उन्होंने देखा कि बच्चे अतिशीत के कारण ठिठुरते रहते हैं। पढ़ने में उन्हें असुविधा होती है। ऐसा देखकर महर्षि जी को बड़ी पीड़ा हुई। उन्होंने तुरन्त प्रबन्धकों से बात की और दीवार बना देने

को कहा। काफी प्रयत्न करने के बाद भी मजदूर नहीं मिल सके तो महर्षि जी ने छप्पर की व्यवस्था कर देने को कहा, जिससे ठंडी हवा से छात्र बच सकें। उपस्थित सज्जनों ने छप्पर बनाने की कला से अनभिज्ञता प्रकट की तो महर्षि जी ने छप्पर बनाने की सामग्री एकत्रित करा ली और उन सबको अपने साथ लगाकर छप्पर बाँधने का कार्य आरम्भ कर दिया। उन लोगों को वे छप्पर बाँधने की विधि भी बताते जा रहे थे। छप्पर तैयार हो गया तब महर्षि जी को सन्तोष हुआ।

74. कौवा अधिक विद्वान् है

कासगंज से महर्षि जी छलेसर पहुँचे और वहाँ से वे अलीगढ़ पहुँच गए। अलीगढ़ में राजा जयकृष्ण ने उनका आतिथ्य करना स्वीकार किया। इसी नगर में एक पण्डित महर्षि जी के समीप उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए उपस्थित हो गया। वह महर्षि जी के स्थान के सामने बने मन्दिर के ऊँचे चबूतरे पर बैठा। श्रोताओं ने उसे ऐसा करने से रोका और कहा—"महात्माओं से ऊँचे स्थान पर विराजमान होना शोभा की बात नहीं है।"

उसने वहीं बैठने का हठ किया—"मैं भी विद्वान् हूँ। इनसे नीचे स्थान पर क्यों बैठूँ?"

महर्षि जी ने हँस कर सभा में उपस्थित सज्जनों से कहा—"उसे वहीं बैठे रहने दीजिए। ऊँचे पर बैठने से कोई विद्वान् नहीं हो जाता और यदि हो जाता हो तो फिर सामने पेड़ की शाखा पर बैठा हुआ कौवा इनसे ज्यादा विद्वान् है।" वह लज्जित हुआ। उसे फिर महर्षि जी से वार्ता करने का साहस नहीं हुआ।

75. यज्ञ का महत्त्व

अलीगढ़ वास के समय सर सैय्यद अहमद खाँ महर्षि जी से भेंट करने आए। पहली ही भेंट में वे महर्षि जी के सौम्य स्वभाव, सरल व्यवहार और विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों से इतने प्रभावित हुए कि उनके दर्शनों के लिए वे नित्य ही अपने मित्र-बन्धुओं को साथ लेकर आने लगे। एक दिन उन्होंने महर्षि जी से पूछा कि और तो आपकी सभी बातें सही हैं,

परन्तु यह बात समझ में नहीं आई कि अग्नि में थोड़ा-सा घी और सामग्री डालने से वातावरण कैसे शुद्ध हो सकता है ?

महर्षि जी ने प्रेम से उन्हें समझाया—"जैसे हाँडी-भर दाल-सब्जी को माशा भर हींग सुगन्धित कर देता है वैसे ही थोड़ा-सा घी और सामग्री अग्नि के संयोग से वायु को सुगन्धित और आरोग्य प्रदान करने वाला बना देता है।" सर सैय्यद अहमद खाँ और उनके साथी महर्षि जी के उत्तर से सन्तुष्ट हुए और शिष्टाचार के साथ उनसे विदा हुए।

वृन्दावन में धर्मप्रचार के पश्चात् चैत्र बदी 11 संवत् 1930 को महाराज मथुरा आ गए। मथुरा में उन्होंने पुरुषोत्तमदास जी के उद्यान में निवास किया।

76. समाधिस्थ ऋषि-दर्शन से भक्त की तृप्ति

प्रयाग में पण्डित ठाकुर प्रसाद जी उनके भोजन की व्यवस्था करते थे। वे उनके परम भक्त हो गए थे। दोनों समय घर से भोजन तैयार करवा कर स्वयं उनके आवास पर पहुँचाते। वे उनके भव्य शरीर को निहारने में सुख पाते। महर्षि जी को योग-साधना में बैठे देखने की उनकी इच्छा प्रबल होती चली गई। उसने सेवकों से साधना-समय की जानकारी प्राप्त कर ली। महर्षि जी कुटिया के अन्दर वाले भाग में ध्यानावस्थित होते थे। ध्यान के समय वे कुटिया के कपाट बन्द करना कभी नहीं भूलते थे। ठाकुर प्रसाद एक दिन सेवकों के बताए समय पर वहाँ उपस्थित हो गया। कुटिया के द्वार बन्द थे। वह कपाट के एक छिद्र से साधना-स्थित महर्षि जी के सौम्य मुखमण्डल को उस समय तक निहारता रहा जिस समय तक वे साधना में स्थिर रहे।

77. यही मोक्ष का मार्ग है

गंगा के किनारे पर एक वयोवृद्ध सन्त रहते थे। वे महर्षि जी से बड़ा स्नेह करते थे। महर्षि जी भी नित्य ही आदर भाव से उनसे भेंट करते। एक दिन उस वृद्ध सन्त ने महर्षि जी से कहा—"बच्चा, यदि तुम निवृत्ति मार्ग को ग्रहण कर लेते तो इसी जन्म में तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति हो जाती।

व्यर्थ ही परोपकार के चक्कर में फंस गए। अब तुम्हें मोक्ष के लिए एक और जन्म लेना होगा।''

महर्षि जी ने उत्तर दिया—''महाराज, मुझे भी मोक्ष की आवश्यकता है। फिर भी देश के अनेक दु:खी-दरिद्र लोग अज्ञान के अँधेरे में भटकते हुए कष्टपूर्ण जीवन भोग रहे हैं। मेरा उद्देश्य इन्हें दु:ख-दारिद्र्य से मुक्ति दिलाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुझे कई जन्म भी लेने पड़ें तो मैं जन्म लेने से नहीं बचना चाहूँगा। मेरे लिए यही मोक्ष का मार्ग है।''

78. वैष्णव मतावलम्बी द्वारा प्राणहरण की चेष्टा

आश्विन सुदि 12 संवत् 1931 (सन् 1874) को महर्षि जी ने मुम्बई-निवासियों के आग्रह पर उस नगर में प्रवेश किया। नगर निवासियों ने रेलवे स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया और गोसाइयों के अखाड़े में बालुकेश्वर पर उनको ठहरा दिया। श्रोताओं की संख्या अधिक होने के कारण कोट मैदान में विशाल मण्डप का प्रबन्ध किया गया। महर्षि जी के प्रवचनों को सुनने के लिए हजारों की संख्या में लोग सभा-स्थल पर नित्य ही उपस्थित होते। पाखण्डों की रीढ़ पर चोट करने से महर्षि जी कभी नहीं चूकते थे, इसलिए महर्षि जी जहाँ भी जाते वहीं विरोधियों की भी कमी न होती, उस समय मुम्बई में वैष्णवमत का अच्छा प्रभाव था। उनका प्रचार था कि तन, मन, धन सब गुरु के अर्पण। महर्षि जी ने इसका घोर विरोध किया कि जब सर्वस्व ही गुरु को समर्पित कर दिया तो परिवार व समाज के लिए क्या शेष रह गया? इस समर्पण की आड़ में अवांछित घटनाएँ घट जाने की सम्भावनाएँ बनी रहती हैं। यह सुनकर वैष्णव मतावलम्बी जीवन गोसाईं महर्षि जी पर अति क्रोधित हुआ। इस बात की जानकारी महर्षि जी को हो गई थी। उसने अपने षड्यन्त्र का माध्यम महर्षि जी के सेवक बलदेवसिंह को बनाया। बलदेव लोभ में फंस गया। एक हजार रुपये की राशि के मोह ने उसे अंधा कर दिया। जीवन गोसाईं खुश था। वह समझता था कि बलदेव महर्षि जी का विश्वास-पात्र सेवक है। भोजन में विषादि देने में उसे कोई असुविधा नहीं होगी।

उसने बलदेवसिंह को महर्षि जी का देहावसान हो जाने पर हजार रुपये देने के लिए लिखित आश्वासन दे दिया था। पाँच रुपये और एक सेर मिठाई अग्रिम उसे दे दी थी।

जब बलदेव, महर्षि जी के सामने गया तब उसके चेहरे के भाव महर्षि जी को बदले-बदले लगे। उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया। उन्होंने उससे पूछ लिया—"गोसाइयों के यहाँ गया था?" बलदेवसिंह का शरीर काँपने लगा। उसने गर्दन हिलाकर हाँ भी भरी। महर्षि जी मुस्कुराए और बोले—"तो दयानन्द के साँसों का हरण करने के लिए कितने में सौदा तय हुआ?" बलदेवसिंह महर्षि जी के चरणों में झुक गया। उसने पूर्व घटी पूरी घटना कह सुनाई। उसने क्षमा कर देने के लिए महर्षि जी से प्रार्थना की और भविष्य में गोसाइयों के यहाँ न जाने की प्रतिज्ञा की।

महर्षि जी ने उसे क्षमा कर दिया, परन्तु अपने समीप नहीं रखा।

जीवन गोसाईं अपने इस षड्यन्त्र में सफल नहीं हुआ तो उसने दूसरी चाल चली। उसने भाड़े पर चार गुण्डे महर्षि दयानन्द की हत्या कर देने के लिए तैयार कर लिये। महर्षि जी नित्य नियम से समुद्र-तट पर भ्रमण के लिए जाया करते थे। वे गुण्डे महर्षि जी का पीछा करने लगे। महर्षि जी को समझते देर न लगी। एक दिन महर्षि जी उनके सामने खड़े हो गए और गम्भीर वाणी में कहा—"तुम मेरी हत्या करना चाहते हो?" महर्षि जी के बोलते ही उनके पैरों तले की जमीन खिसक गई। वे कुछ देर तक भी उनके सम्मुख खड़े न रह सके। जीवन गोसाईं इतना भयभीत हुआ कि उसने मुम्बई छोड़ दी। वह मद्रास भाग गया।

79. वैरागी साधु पर प्रभाव

बालुकेश्वर में महर्षि जी के समीप ही एक वैरागी साधु छोटी-सी कुटिया बनाकर रहता था। नित्य ही वह महर्षि जी के प्रवचन सुनता था। वह उनके ज्ञान और व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी कंठी-मालाएँ सब फेंक दीं, सिर मुँडवा लिया और अपनी कुटिया छोड़कर

श्रीचरणों में आ विराजा। वह संयमी साधक था। उसका शरीर बलिष्ठ और आकर्षक था। वह निरन्तर स्वामी जी की सेवा व सुरक्षा में व्यस्त रहता था।

80. आर्यसमाज-नामकरण

महर्षि जी के प्रवचनों से मुम्बई के श्रद्धालुओं का मन नहीं भरा। वे चाहते थे कि महर्षि जी की अनुपस्थिति में भी सत्संग का कार्यक्रम चलते रहना चाहिए। उन्होंने महर्षि जी से इस सत्संग का नामकरण करने की प्रार्थना की। महर्षि जी ने विचार कर इस सत्संग का नाम '**आर्यसमाज**' रख दिया। गिरगाँव मोहल्ले में डॉ० माणिकचन्द जी की वाटिका में सत्संग हो रहा था। शनिवार का दिन था और चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पञ्चमी, संवत् 1932 (10 अप्रैल 1875) था।

मुम्बई में रहते हुए महर्षि दयानन्द जी ने 'बल्लभाचार्यमत-खण्डन', 'स्वामी नारायणमत-खण्डन' और 'वेदान्तध्वान्त-निवारण' पुस्तकें लिखीं। सत्यार्थप्रकाश मुम्बई पहुँचने से दो मास पूर्व ही पूर्ण हो गया था। राजा जयकृष्णदास उसके प्रकाशन की व्यवस्था में लगे हुए थे।

81. परिश्रमी निर्धन नहीं होते

महर्षि जी समद्रष्टा सन्त थे। उनके मन में ऊँच-नीच, धनी-निर्धन का कोई भेद नहीं था। समीप के देहातों से भी लोग उनके प्रवचन सुनने के लिए आया करते थे। सन् 1874 के अन्त में महर्षि जी वेद-प्रचारार्थ पंजाब में थे। करतारपुर (पंजाब) गाँव के लोगों ने एक दिन श्रीचरणों में प्रार्थना की—"महाराज, हम लोग देहात के निर्धन किसान हैं। बहुत साधन हमारे पास नहीं हैं। नगर-वासियों का आतिथ्य आप सदा स्वीकारते हैं। एक दिन गाँव में चलकर हमारा साधारण-सा भोजन स्वीकारें तो हम धन्य हो जाएँगे।" महर्षि जी ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी और कहा कि परिश्रमी लोग कभी निर्धन नहीं होते। वे लोग महर्षि जी को लिवा लाने के लिए बैल-तांगा और रथों को संग लेकर आए थे, परन्तु महर्षि जी पैदल ही उनके साथ चले। उन्होंने गाँव से बाहर आम के वृक्ष के नीचे

स्वच्छ वस्त्र बिछाकर महर्षि जी को बैठाया। पूरा गाँव ही महर्षि जी के दर्शनों के लिए उमड़ पड़ा। अतिप्रेम से उनका प्रवचन सुना, भोजन कराया और फिर उन्हें विदा कर नगर तक छोड़ने आए।

82. पोथियों के पाठ नहीं बेचता

महर्षि जी अपने प्रवचन के पश्चात् किसी भी सज्जन से कोई भेंट स्वीकार नहीं करते थे। वे विनम्रतापूर्वक श्रद्धालु भक्त को समझा देते— ''प्रवचन के पश्चात् वक्ता को भेंट चढ़ाना आर्ष रीति के अनुकूल नहीं है। मैं अपनी पोथियों के पाठ नहीं बेचता हूँ। अज्ञान के अन्धकार से समाज को निकालना मेरा धर्म है।''

महर्षि जी अपने भोजनादि के लिए भी कभी किसी को नहीं कहते थे। श्रद्धालु लोग स्वयं ही महर्षि जी की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखते थे। कहीं प्रबन्ध न हो तो खिचड़ी, चने-चबैने आदि से ही अपना काम चला लेते थे।

83. द्वेष से द्वेष शान्त नहीं होता

अपना अपमान करने वाले लोगों पर भी महर्षि जी कभी क्रोध नहीं करते थे। उन्हें दुराग्रही मार्ग से हटाने के लिए स्नेह का व्यवहार किया करते थे। एक बार भरूच (गुजरात) में महर्षि जी उपदेश कर रहे थे। सभा में सहस्रों श्रोता उपस्थित थे, तभी माधवराव त्र्यम्बक सभा में उपस्थित हो महर्षि जी से बोला—''मैं आपसे मूर्तिपूजा के विषय में शास्त्रार्थ करने को उद्यत हूँ। मूर्तिपूजा का मण्डन वेदों के प्रमाणों से सिद्ध करके ही जाऊँगा''। इस पर महर्षि जी भी उद्यत हो गये परन्तु काफी प्रयास करने पर भी वह महर्षि जी के एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सका। अन्त में उसने महर्षि जी को अभद्र शब्दों से सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया। उसका ऐसा आचरण देख कर महर्षि जी के भक्त बलदेव को क्रोध आ गया। उसने त्र्यम्बक से कहा—''जरा ठहर, तुझे अभी सीधा किए देता हूँ।'' तभी महर्षि जी ने बलदेव को समझाया—''देखो बलदेव, ऐसे लोग अज्ञान के अँधेरे में भटक रहे हैं। इन्हें सीधी राह दिखाने के लिए ही हम

रात-दिन यायावरी करते हैं। इनके कल्याण के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। उपदेशक को अपने मान-अपमान का ध्यान नहीं करना चाहिए। उसे सहनशील होना ही चाहिए। द्वेष से कभी द्वेष शान्त नहीं होता।''

बलदेव शान्त होकर अपने स्थान पर बैठ गया। इस बीच अवसर पाकर माधवराव धीरे-से खिसक गया था।

84. सत्य की राह से नहीं हट सकता

जेठालाल जी वकील पौराणिक वातावरण में पले थे, परन्तु दुराग्रही नहीं थे। वे महर्षि जी के सत्संग में नित्य-प्रति आते थे। महर्षि जी के व्यक्तित्व और वक्तृत्व कला ने उन पर जादू-सा असर किया। वे जहाँ अवसर पाते, महर्षि जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते। वे एक दिन महर्षि जी से बोले—''महाराज, आपके प्रवचन इतने मनोहारी होते हैं कि श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। विरोधी भी इसके लिए आपकी प्रशंसा किए बिना नहीं रहते। आप अपने वक्तव्यों के विषय में थोड़ा-सा परिवर्तन कर लें तो लोग आपको शंकर का अवतार मानने लग जाएँगे।''

महर्षि जी हँस पड़े। उन्होंने वकील साहब से पूछा—''क्या परिवर्तन कर लें जेठालाल जी?''

जेठालाल जी ने कहा,''आप मूर्तिपूजा का खण्डन न किया करें, उसका शास्त्रोक्तविधि से मण्डन आरम्भ कर दें। यह कार्य आपके लिए कठिन भी नहीं है।''

महर्षि जी गम्भीर हो गए। बोले—''मेरे लिए असत्य भाषण सम्भव नहीं है। यदि मैं ऐसा कर पाता तो काशी-नरेश मुझे विश्वनाथ मन्दिर का पद देने के लिए सहर्ष उद्यत थे। वकील साहब! संसार का कोई भी आकर्षण मुझे सत्य की राह से विचलित करने में असमर्थ है।''

85. सहृदयी महर्षि दयानन्द

महर्षि जी अपने छात्रों और सहयोगियों से सहृदयता और दयालुता-पूर्ण व्यवहार करते थे। पण्डित कृष्णराम इच्छाराम महर्षि जी के समीप रहकर विद्याध्ययन करते थे। इसके लिए वे महर्षि जी के लेखन-कार्य में

सहायता करते थे। एक दिन उन्होंने ज्वर से ग्रस्त हो शय्या पकड़ ली। महर्षि जी को जब यह जानकारी मिली तो तुरन्त वे कृष्णराम से मिले। इस समय उनका सारा शरीर दर्द कर रहा था। महर्षि जी उसका सिर दबाने बैठ गए। कृष्णराम इच्छाराम ने इसका विरोध किया—''महाराज, आप यह क्या कर रहे हैं। नहीं-नहीं, आप ऐसा न करें। मुझे पाप का भागी न बनाएँ।'' महर्षि जी ने स्नेह-पूर्वक कहा—''इससे कोई पाप नहीं लगता। हमें एक-दूसरे की सहायता करनी ही चाहिए। सेवाकार्य से कभी विरत नहीं होना चाहिए। ऐसा करने से अन्यों को सेवा करने की प्रेरणा मिलती है।''

86. आर्यसमाज की स्थापना

बलसाड होते हुए महर्षि जी दूसरी बार मुम्बई पधारे। इस बार उनके भक्तों ने आर्यसमाज की स्थापना के लिए विनम्र आग्रह किया। निश्चय हुआ कि आर्यसमाज के नियमोपनियम की रचना कर लेनी चाहिए। श्री पानाचन्द्र आनन्द जी पारिख को सर्वसम्मति से आर्यसमाज के नियमोपनियम के निर्माण का कार्यभार सौंप दिया।

चैत्र सुदी 5 संवत् 1932 (सन् 1875) दिन शनिवार को महर्षि जी के आशीर्वाद से मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना कर दी गई। आर्यसमाज की स्थापना गिरगाँव मुहल्ले में डॉ० माणिक चन्द की वाटिका में सन्ध्या के समय हुई। इस सभा में दीन-दुःखियों की सेवा के लिए एक सेवक-समिति का निर्माण भी किया गया। पानाचन्द्र आनन्द जी ने आर्यसमाज के लिए 28 नियमों की रचना की। नियम स्वीकृत होने के पश्चात् अधिकारियों का निर्वाचन सर्वसम्मति से सम्पन्न हुआ।

87. वेदमन्त्र सुनने का अधिकार सभी को

मुम्बई के पश्चात् महर्षि जी बड़ौदा में ठहरे। बड़ौदा में सब से पहला व्याख्यान वेदाधिकार विषय पर रखा गया। विषय की घोषणा पहले ही कर दी गई थी, इसलिए वहाँ का पण्डित-समूह महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने की पूरी तैयारी में था। व्याख्यान में महर्षि जी ने वेदमन्त्रों

का उच्चारण किया। पण्डित-समूह एक साथ ही उठ खड़ा हुआ। इस व्याख्यान में अधिकारीगण भी उपस्थित थे। उन्होंने कारण पूछा तो पण्डितों ने कहा—''महर्षि दयानन्द ने अनर्थ कर दिया। पवित्र वेदों के मन्त्रों को सुनने का अधिकार सभी को नहीं है। इस सभा में मुसलमान भी हैं और शूद्र भी। ऐसा पापकर्म हम नहीं देख सकते।''

महर्षि जी ने कहा—''वेद ईश्वरीय ज्ञान है, और ईश्वर कभी किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं बरतता, अतः वेदों को पढ़ने, समझने और सुनने का अधिकार सभी को है।''

शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ की भाषा संस्कृत रही। शास्त्रार्थ के समय महर्षि जी सरल संस्कृत का उच्चारण करते थे, जिससे साधारण श्रोता भी लाभ उठा सकें, परन्तु इस शास्त्रार्थ में वहाँ के पण्डितों ने महर्षि जी को क्लिष्ट संस्कृत बोलने के लिए बाध्य किया। संस्कृत पर स्वामी जी का अद्वितीय अधिकार था। उन्होंने संस्कृत के विरल शब्दों का प्रयोग किया। संस्कृत समझे बिना उत्तर देना उनके लिए सम्भव नहीं था। लगभग दो घंटे तक वाद चलता रहा। पण्डित जनों के शान्त होकर बैठ जाने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं था। इस प्रकार उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ा।

88. केशों को बढ़ाना त्याग व तपस्या का लक्षण नहीं है

महर्षि जी कभी-कभी गम्भीर विषयों को हास्य द्वारा भी समझाते देखे गए। बड़ौदा में महर्षि जी अपना मुण्डन करा रहे थे। उसी समय एक पौराणिक शास्त्री उनके समीप आए और बोले—''साधु लोग तो त्यागी-तपस्वी होते हैं। उन्हें देह को सजाने-सँवारने से क्या प्रयोजन?''

महर्षि जी ने हँसकर उत्तर दिया—''यदि केशों को बढ़ाने में त्याग और तप है तो फिर रीछ सबसे बड़े त्यागी-तपस्वी हुए। देह को स्वस्थ-सुन्दर रखना आवश्यक है, तभी व्यक्ति अपने को परोपकार के कार्यों में लगा सकता है।''

शास्त्री शान्त हो गया और अपनी राह लगा।

89. मूर्तिपूजा अवैदिक है

मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना क्या हुई, वहाँ के पौराणिक जगत् में हलचल मच गई। पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ के लिए उतावलापन दिखा रहे थे। इसकी सूचना महर्षि जी को मिली तो वे तुरन्त मुम्बई के लिए प्रस्थान कर गए। मुम्बई के कमलनयनाचार्य पण्डितों के अगुवा थे। महर्षि जी के पहुँचते ही शास्त्रार्थ की तैयारियाँ आरम्भ हो गईं। शास्त्रार्थ के लिए फराम जी कावस जी इंस्टीट्यूट का स्थान निश्चित किया गया। आषाढ़ बदी 3, संवत् 1932 (सन् 1875) को दोपहर बाद 3 बजे महर्षि जी सभा स्थल पर पहुँच गए। कुछ समय बाद पण्डित कमलनयन जी भी अपने शिष्यों के साथ सभा में पहुँच गए। प्रमाण के लिए चारों वेदों सहित बहुत-से ग्रन्थों की व्यवस्था की गई थी। इस सभा में सामान्य श्रोताओं के अतिरिक्त नगर के विद्वान् और प्रतिष्ठित जन तथा अधिकारी भी विद्यमान थे। इस शास्त्रार्थ-सभा का सभापतित्व रायबहादुर बेचरदास जी को सौंपा गया।

शास्त्रार्थ आरम्भ होने की अनुमति सभापति द्वारा दे दी गई। पण्डित कमलनयन जी ने कहा—"शास्त्रार्थ तभी आरम्भ होगा जब इस सभा में उपस्थित सभी पण्डित अपने-अपने सम्प्रदाय के नाम की घोषणा कर दें।"

उपस्थित भद्रजनों ने उन्हें समझाया कि शास्त्रार्थ का सम्प्रदायों से कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः शास्त्रार्थ आरम्भ हो जाना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने भी उनसे आग्रह किया—"पण्डित जी, उपस्थित जनसमूह इस सत्य को जानने के लिए उत्सुक है कि मूर्तिपूजा वेद-विहित है अथवा नहीं। आपके समक्ष चारों वेद प्रस्तुत हैं। आप किसी के माध्यम से भी मूर्तिपूजा का प्रतिपादन करें।"

परन्तु पण्डित कमलनयन जी शास्त्रार्थ के लिए तैयार नहीं हुए। वे यही कहते रहे कि पहले सभी अपने सम्प्रदायों की घोषणा करें। यही

कहते हुए वे अपने शिष्यों सहित उठकर चले गए। महर्षि जी के प्रति उपस्थित जनों की श्रद्धा बढ़ गई। महर्षि जी का पक्ष सत्य है, कमलनयन आचार्य के चले जाने से यह बात सिद्ध हो गई।

श्रोताओं के पूछने पर महर्षि जी ने बताया कि मूर्ति-पूजा सनातन नहीं है। यह बौद्धों और जैनियों से आरम्भ हुई है।

90. पूना में प्रवचनमाला

पूना के न्यायाधीश श्री महादेव गोविन्द रानाडे महर्षि जी के परम भक्त थे। उनकी इच्छा थी कि महर्षि जी कुछ समय पूना में वास कर अपने प्रवचनों से लाभान्वित करें। महर्षि जी उनकी प्रार्थना पर मुम्बई से पूना जा विराजे। यह संवत् 1932 (सन् 1875) में आषाढ़ बदी 13 का दिन था।

महर्षि जी के पूना आगमन पर महादेव गोविन्द रानाडे बड़े उत्साह में थे। उन्होंने महर्षि जी के नियमित प्रवचनों की व्यवस्था करवा दी। स्वयं भी नित्य ही वे महर्षि जी के प्रवचन सुनने के लिए आते।

पूना में महर्षि जी ने 15 महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिए। प्रबुद्ध जन उन व्याख्यानों से इतने प्रभावित हुए कि जहाँ भी वे मिल बैठते, वहीं महर्षि जी की विद्वत्ता की चर्चा करते। महर्षि का 15वां प्रवचन उनका स्वलिखित जन्मचरित था।

पूना में अपने प्रवचनों का कार्य समाप्त करके भाद्रपद संवत् 1932 (सन् 1875) में महर्षि जी मुम्बई लौट आए। इस समय वे वेदभाष्य के कार्य में संलग्न थे। 'संस्कारविधि' और 'आर्याभिविनय' नामक पुस्तकें इससे पूर्व प्रकाशित हो चुकी थीं।

91. नियमित दिनचर्या

इन दिनों महर्षि जी की दिनचर्या बड़ी नियमित थी। वे प्रातः तीन बजे उठ बैठते। शौचादि से निवृत्त हो स्नान कर लेते और फिर योगासन करते। योगासनों के पश्चात् महर्षि जी प्राणायाम में व्यस्त हो जाते। इस कार्य से मुक्ति पाकर वे भ्रमणार्थ नगर से दूर निकल जाते। भ्रमण-समय

वे इतनी तीव्र गति से चलते थे कि कोई भी भक्त उनके साथ भ्रमण नहीं कर पाता था। भ्रमण से लौटकर महर्षि जी एकान्त में बैठकर साधना में खो जाते।

ठीक आठ बजे तक महर्षि जी अपने ठिकाने पर लौट आते। घड़ीभर विश्राम कर दूध लेते और फिर लेखन-कार्य में जुट जाते। लेखन-कार्य ग्यारह बजे तक होता रहता। महर्षि जी दोपहर के भोजन से पूर्व भी स्नान करते थे। स्नान कर भोजन करते और फिर आधा घड़ी बाईं करवट लेटकर विश्राम करते, पश्चात् लेखन का कार्य पुनः आरम्भ कर देते और सायंकाल चार बजे तक करते रहते। लेखन-कार्य से निवृत्त हो महर्षि जी श्रद्धालुओं के साथ धर्मचर्चा करते और उनकी शंकाओं का समाधान करते। सन्ध्याकाल में उपासना तथा तदनन्तर शंका-समाधान यह कार्य रात के दस बजे तक चलता रहता। इन दिनों महर्षि जी रात में भोजन नहीं करते थे। केवल दुग्धाहार ही लेते।

रात के दस बजे के पश्चात् महर्षि जी नहीं जागते थे।

मुम्बई से महर्षि जी ने प्रस्थान किया तो फर्रुखाबाद, कायमगंज, काशी, जौनपुर और अयोध्या होते हुए आश्विन सुदी नवमी संवत् 1933 (सन् 1876) को लखनऊ नगर में जा विराजे। सरदार विक्रम सिंह अहलूवालिया की कोठी में उनके आवास का प्रबन्ध किया गया।

लेखनकार्य के कारण महर्षि जी की व्यस्तताएँ बढ़ गई थीं। प्रसिद्धि के कारण उनके कार्य-क्षेत्र का विस्तृत हो जाना स्वाभाविक था। उनके प्रवचनों से प्रभावित श्रद्धालुओं, जिज्ञासुओं और अन्य प्रशंसकों के पत्र उन्हें निरन्तर मिलने लगे थे। उधर पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ हो जाने के कारण छपाई एवं प्रूफ-सम्बन्धी पत्र भी उन्हें मिलते।

92. मूर्तिपूजा किसी भी मत की ठीक नहीं

दिल्ली में महर्षि जी को दिल्ली से बाहर शेरमल के अनार बाग में ठहराया गया। इसी स्थान पर उनके प्रवचनों की व्यवस्था भी की गई। हजारों धर्मप्रेमी सज्जन उनकी सभाओं में उपस्थित होते। एक दिन एक

मुसलमान श्रोता ने कहा—"आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, यह प्रशंसा का कार्य है। यह इस्लाम के मुताबिक है।"

महर्षि जी बोले—"मूर्तिपूजा ठीक नहीं है। वह होनी ही नहीं चाहिए, किन्तु पौराणिकों की मूर्तियाँ तो छोटी भी होती हैं, पर मुसलमान तो बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ बनाते हैं। मकबरे, मजार, कब्र जिन्हें हटाया जाना आसान नहीं है।" उस मुसलमान श्रोता ने महर्षि जी से आगे वार्ता नहीं की। वह चुप हो गया था।

93. अज्ञानवश बच्चे मिट्टी खाते हैं, बड़े होकर नहीं

महर्षि जी अपने निवास पर धर्म-चर्चा कर रहे थे। एक कृष्ण का भक्त आया और उसने मिट्टी का छोटा ढेला महर्षि जी के सम्मुख रख दिया। महर्षि जी ने उससे पूछा—"यह क्या है?"

वह बोला—"आपके लिए प्रसाद।"

महर्षि जी ने कहा—"यह कैसा प्रसाद है?"

आगन्तुक ने बताया—"कृष्ण भगवान् बचपन में मिट्टी खाते थे, अतः प्रसाद-रूप में इसे आपके लिए ले आया हूँ।"

महर्षि जी हँसकर बोले—"अज्ञानवश मिट्टी तो सभी बच्चे खाते हैं। जब वे समझदार हो जाते हैं, फिर कभी नहीं खाते।" वह व्यक्ति शर्मिन्दा होकर चला गया।

94. समाज-सुधारकों की बैठक

देश की दुर्दशा महर्षि जी को सदैव व्यथित किए रहती थी। अज्ञान ही दुर्दशा का कारण है। इसके रहते अन्धविश्वास पनपता है और आदमी रूढ़ियों के बन्धन में फंसकर दुःख और दारिद्र्य भोगता रहता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए महर्षि जी ने दिल्ली में समाज-सुधारकों की एक बैठक बुलाई, जिसमें देश के विभिन्न सुधारक सम्मिलित हुए। श्री केशवचन्द्र सेन, सर सैयद अहमद खाँ, श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, श्री नवीनचन्द्र राय, श्री कन्हैयालाल अलखधारी और श्री इन्द्रमणि जैसे प्रसिद्ध

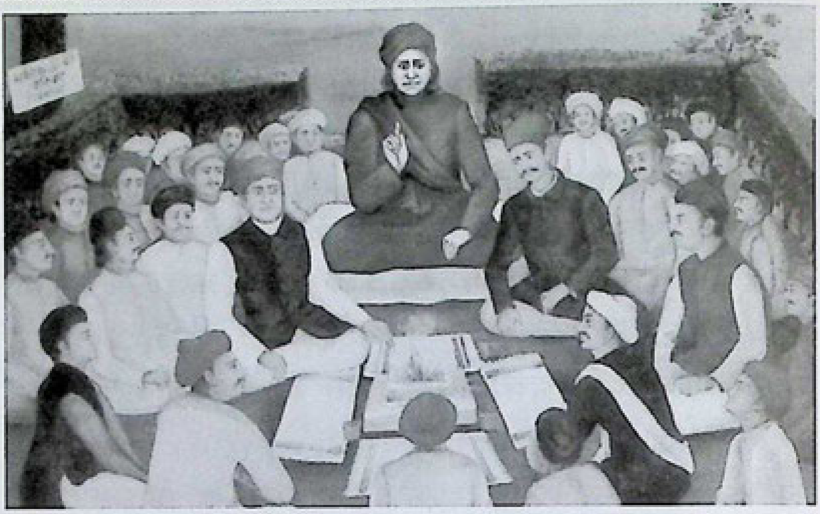

सुधारक वहाँ उपस्थित थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी भावनाओं को उनके सम्मुख प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा—''देश निरन्तर अधोगति की ओर जा रहा है। दरिद्रता बढ़ रही है, नैतिक पतन हो रहा है। लोग खुशहाल नहीं हैं। हमें मिलकर कोई ऐसा समाधान ढूंढ़ना चाहिए, जिससे यह देश अपनी खोई हुई गरिमा को पुनः प्राप्त कर सके। सुखी और समृद्ध जीवन जीने का मार्ग पा सके।'' परन्तु वैचारिक सामञ्जस्य के अभाव में महर्षि जी की यह योजना सफल न हो सकी।

95. चाँदापुर के मेले में

संवत् 1934 (सन् 1877) में उन्हीं दिनों शाहजहाँपुर (उ०प्र०) के समीप चाँदापुर गाँव में मेला लग रहा था। पहले वर्ष इसी मेले में पादरियों, मुसलमानों और कबीर पंथियों में वाद-विवाद हुआ था। इस चर्चा में मुसलमानों का पलड़ा भारी रहा था। उस गाँव में कबीरपंथियों की संख्या ज्यादा थी। उनके कारोबार दूर तक फैले हुए थे। उनमें प्यारेलाल और उनके भाई मुक्ताप्रसाद प्रमुख थे। वे जब अपने काम से इधर-उधर जाते तो मुसलमान उन्हें चिढ़ाते—''मेले में आप लोगों ने देख लिया कि इस्लाम धर्म ही सच्चा धर्म है। अब आपको इसे स्वीकार कर लेना चाहिए।'' वे

लोग उनकी इस बात का कोई उत्तर न दे पाते, इसलिए इस वर्ष के मेले में वे कोई ऐसा विद्वान् लाना चाहते थे जो वाद-विवाद में मुसलमानों और पादरियों को निरुत्तर कर सके। इसके लिए उन्होंने आर्यसमाज के एक सज्जन मुंशी इन्द्रमणि मुरादाबादी से सम्पर्क किया। उन्होंने उन्हें वचन दिया कि मैं तो मेले में अवश्य ही आऊँगा, परन्तु मेरी पकड़ इस विषय में गहरी नहीं है। आप वेदों के महापण्डित महर्षि दयानन्द को आमन्त्रित कीजिए। उनकी विद्वत्ता के सामने कोई भी मतावलम्बी नहीं ठहर पाता। महर्षि जी को आमन्त्रित करने का कार्य इन्द्रमणि जी को ही सौंप दिया गया। उन्होंने सहारनपुर जाकर महर्षि जी से सम्पर्क किया। महर्षि जी ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

96. जो सत्य सनातन है, वही स्वीकार्य है

यथासमय मुंशी इन्द्रमणि जी महर्षि जी को लेकर चाँदापुर के मेले में पहुँच गए। कबीरपंथियों की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। वे लोग महर्षि जी के दिव्य दर्शन पाकर कृतकृत्य हो उठे। उन्होंने महर्षि जी को श्रद्धापूर्वक गाँव में ठहराना चाहा, परन्तु महर्षि जी ने स्वीकार न किया। गाँव से दूर उन्होंने अपने डेरे की व्यवस्था कराई। शास्त्रार्थ के लिए तम्बू लगवा दिए गए।

19 मार्च सन् 1877 को मेला आरम्भ हुआ। अगले दिन शास्त्रार्थ की तिथि निश्चित कर दी गई। मुसलमान दूर-दूर से इस शास्त्रार्थ को सुनने के लिए आ रहे थे। इन्द्रमणि जी उनकी भारी संख्या देखकर आशंकित हो गया। उसने महर्षि जी से कहा—"मुसलमान भारी संख्या में उपस्थित हैं। ये लोग शीघ्र ही उत्तेजित हो जाते हैं, इसलिए महाराज शास्त्रार्थ में कठोर शब्दावली का प्रयोग न करें तो अच्छा है।"

महर्षि जी ने इन्द्रमणि को उत्साहित करते हुए कहा—"इन्द्रमणि, तुम किसी प्रकार की कोई चिन्ता मत करो। दयानन्द कभी सत्य की प्रतिष्ठा करने से चूकता नहीं है। सत्य मेरा अपना नहीं है। सत्य सनातन है, उसका प्रचार-प्रसार मेरा ध्येय है। इस मार्ग से मुझे कोई विचलित नहीं

कर सकता।''

20 मार्च को शास्त्रार्थ सभा का आयोजन किया गया। समय पर पण्डित, मौलवी और पादरी उसमें आ विराजे। विशाल पण्डाल ठसाठस भर गया। लगता था कि सारा मेला ही सभा-स्थल पर उपस्थित हो गया हो।

निम्न पाँच विषय शास्त्रार्थ के समय विचारार्थ निश्चित किए गए—

1. सृष्टि की रचना ईश्वर ने कब, क्यों और किस वस्तु से की?
2. ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं?
3. ईश्वर दयालु और न्यायकारी किस प्रकार हैं?
4. किस कारण वेद, बाइबिल और कुरान ईश्वर वचन हैं?
5. मोक्ष से क्या अभिप्राय है? वह कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ तो मौलवी और पादरी आपस में उलझ गए। एक-दूसरे को कटु वचनों से सम्बोधित करने लगे। महर्षि जी ने कहा कि हम लोग यहाँ सत्य के निर्णय के लिए उपस्थित हुए हैं। आपत्तिजनक भाषा का प्रयोग करना शोभनीय नहीं है।

महर्षि जी ने बोलना आरम्भ किया तो पूरी सभा ने दत्तचित्त होकर सुना। मौलवी और पादरी उदास हुए घर लौटे।

अगले दिन मोक्ष विषय पर ही चर्चा हुई। इस विषय का आरम्भ महर्षि जी ने ही किया। उन्होंने कहा—''सुख-दुःख से छूट कर परमानन्द की प्राप्ति ही मोक्ष है। इससे मनुष्य जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।''

मौलवियों और पादरियों को विशेष रुचि से नहीं सुना गया। परिणाम यह हुआ कि पादरी अगले ही दिन मेला छोड़कर चले गए। मौलवी भी नहीं ठहरे।

एक-दो पादरी जो महाराज से अत्यधिक प्रभावित थे, वहीं बने रहे। महर्षि जी उनके साथ धर्म-चर्चा करते रहे। महर्षि जी ने उनसे कहा कि बाइबिल में कहीं भी ऐसा नहीं लिखा कि ईसा पर विश्वास लाने से मनुष्य

को मोक्ष प्राप्त होता है। यह पादरियों की कल्पना-मात्र लगता है।

97. पुनर्जन्म होता है

जिस दिन महर्षि जी लुधियाना (पंजाब) पहुँचे वह संवत् 1934 वैशाख बदी द्वितीया का दिन था। श्रद्धालुओं ने महर्षि जी के ठहरने का प्रबन्ध नगर से बाहर लाला वंशीधर के बगीचे में किया। इस नगर में महर्षि जी ने सात प्रवचन दिए और अन्तिम दिन श्रोताओं की शंका का समाधान किया। एक पादरी ने महर्षि जी से पूछा—"क्या पुनर्जन्म होता है?"

"हाँ।" महर्षि जी ने बताया।

"किस प्रकार?" पादरी ने अगला प्रश्न किया।

इस पर महर्षि जी ने मनुष्यों द्वारा सुख-दुःख की अनुभूति आदि अनेक युक्तियों से पुनर्जन्म को सिद्ध करके उसकी जिज्ञासा को शान्त किया।

98. अप्रसन्नता की परवाह नहीं

लुधियाना से निवृत्त होकर महर्षि जी लाहौर पधारे। इन दिनों वे वेदभाष्य के कार्य में लगे थे, इसलिए उनके साथ बहुत से ग्रन्थ और लिखने वाले पण्डित भी होते थे। लाहौर पहुँच कर महर्षि जी रत्नचन्द्र जी के बगीचे में ठहरे। नित्य ही उनके प्रवचन सुनने भारी संख्या में लोग आने लगे। महर्षि जी की वक्तव्य शैली की प्रशंसा पूरे नगर में होने लगी। बहुत से लोग तो मात्र महर्षि जी के दर्शन कर के ही तृप्त हो जाते। महर्षि जी के इसी गुण से प्रभावित होकर ब्रह्म-समाजियों ने उन्हें अपने मन्दिर में आमन्त्रित किया। महर्षि जी ने अपने प्रवचनों में सिद्ध किया कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है और पुनर्जन्म होता है। ये दोनों विषय ही ब्रह्म-समाजियों के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं हैं, इसलिए महर्षि जी के वक्तव्यों से उनका अप्रसन्न होना स्वाभाविक था। उन्होंने रत्नचन्द्र जी के ऊपर यह कहकर दबाव डाला कि आपने अपने उद्यान में नास्तिक साधु को ठहरा दिया है। वह सभी देवी-देवताओं के विरुद्ध व्याख्यान देता है, इससे सभी

धर्म-प्रेमी सज्जन आपसे अप्रसन्न हो जाएँगे। उनके द्वारा ऐसा कहने से वे घबरा गए और उन्होंने अपना उद्यान खाली करा लिया, तब उनके भक्तों ने उन्हें छज्जू के चौबारे के समीप डॉ० रहीम खाँ की कोठी में ठहरा दिया।

पण्डित मनफूल जी महर्षि जी के आदर-सत्कार में लगे हुए थे। महर्षि जी वेद-विरुद्ध सभी मतों का निर्भीकता से खण्डन करते थे। पोंगा-पंथी लोग पण्डित मनफूल से भी रुष्ट हुए, तब एक दिन उसने महर्षि जी से निवेदन किया—"आप खण्डन न किया करें, इससे नगर के बहुत से लोग असन्तुष्ट हैं। महाराजा जम्मू-कश्मीर भी आपसे अप्रसन्न हैं।"

महर्षि जी ने कहा—"मैं किसी के अप्रसन्न होने से वेदाज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। वेद के अनुरूप आचरण करना मेरा धर्म है। मैं इससे विमुख नहीं हो सकता, फिर कोई प्रसन्न हो या अप्रसन्न, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं।"

महर्षि जी के इस कथन के बाद मनफूल ने महर्षि जी से सम्पर्क ही समाप्त कर लिया। वहाँ महर्षि जी के प्रवचनों का इतना प्रभाव हुआ कि उनके भक्तों की संख्या नित्य-प्रति बढ़ती चली गई। उनके उपदेशों में हिन्दू, मुसलमान, पादरी और पण्डित सभी सम्मिलित होते थे।

99. वेदों में लौकिक आख्यान नहीं

एक दिन पण्डित शिवनारायण ने कहा—"स्वामी जी, सामवेद में उल्लू की कहानी लिखी है।" महर्षि जी ने उसके कथन को मिथ्या कहा, परन्तु वह नहीं माना। महर्षि जी के समीप बैठे बहुत से श्रद्धालु धर्म-चर्चा सुन रहे थे। आखिर में महर्षि जी ने सामवेद की प्रति उसके हाथ में देकर कहा—"सामवेद में उल्लू की कहानी उपस्थित सभी सज्जनों को दिखाइए।"

काफी समय तक पण्डित शिवनारायण सामवेद के पृष्ठ पलटते रहे, परन्तु उल्लू की कथा सामवेद में नहीं दिखा सके। उपस्थित सज्जनों के सम्मुख उन्हें बहुत लज्जित होना पड़ा।

100. लाहौर में आर्यसमाज के दस नियम

वैशाख संवत् 1934 (सन् 1877) में महर्षि जी लाहौर में विद्यमान थे। महर्षि जी के अनुयायियों ने महर्षि जी से लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना के लिए विनम्र अनुरोध किया। महर्षि जी अनुभव करते थे कि मुम्बई में निर्मित आर्यसमाज के नियम विस्तृत हैं, उन्हें संक्षिप्त रूप दिया जाना चाहिए, अत: उन्होंने लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व दस नियमों की रचना की।

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है; उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र

रहें।

आर्यसमाज के लिए इन नियमों की रचना कर महर्षि जी ने लाहौर में विधिवत् आर्यसमाज की स्थापना कर दी। ब्रह्म-समाजियों ने तीसरे नियम को निकाल देने की शर्त पर आर्यसमाज में सम्मिलित होने की इच्छा महर्षि जी के सम्मुख प्रस्तुत की, परन्तु महर्षि जी ने उनकी शर्त मानने से इन्कार कर दिया। रायबहादुर लाला मूलराज ने तीसरे नियम में से 'सत्य' शब्द समाप्त करने का परामर्श महर्षि जी को दिया। महर्षि जी ने कहा कि ऐसा सम्भव नहीं है। वेद सत्य-विद्याओं का निर्विवाद पुस्तक है।

महर्षि जी ने लाहौर में आर्यसमाज का पहला सत्संग डॉ० रहीम खाँ की कोठी पर ही किया। नवनिर्मित आर्यसमाज के दस नियमों का पाठ किया गया। इसके साथ ही मुम्बई में पारिख द्वारा निर्मित नियम निरस्त कर दिए गए।

वेद-विरुद्ध मत-खण्डन से पौराणिक जगत् में भारी अशान्ति व्याप्त हो गई थी। वे किसी भी भाँति महर्षि जी को कष्ट पहुँचाने के यत्न में रहते।

101. महर्षि दयानन्द की दया

एक पाठशाला में पण्डित जी पढ़ाते थे। उन्होंने अपने छात्रों से कहा—"हम सभी कथा सुनने चलेंगे। तुम अपनी पुस्तकों के थैलों में ईंट-रोड़े और पत्थर भर कर वहाँ बैठना। जब मैं तुम्हें संकेत करूँ, उसी समय कथा कहने वाले पण्डित के ऊपर ये कंकड़-पत्थर बरसा देना, फिर हम तुम्हें लड्डू देंगे।" वह पण्डित उन बच्चों को लेकर महर्षि जी की सभा में पहुँच गया। साँझ होते ही उसने छात्रों को संकेत कर दिया। बच्चों ने महर्षि जी पर कंकड़-पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिए। उनमें से कुछ बच्चों को पुलिस ने पकड़ कर महर्षि जी के सामने प्रस्तुत कर दिया। बच्चे डर रहे थे। महर्षि जी ने प्यार से पूछा—"तुम हमारे ऊपर पत्थर क्यों फेंक रहे थे?" बच्चों ने पण्डित द्वारा कही गई सारी बातें महर्षि जी

को बता दीं। महर्षि जी ने तुरन्त लड्डू मँगवाए और बच्चों में बाँट उन्हें विदा किया।

102. बड़प्पन का अर्थ

महर्षि जी के उपदेश के लिए एक ऊँचा मंच बना दिया गया था, जिससे श्रोतागण भली-भाँति उनका उपदेश सुन सकें। महर्षि जी ने अपने आसन के सामने ही एक कुर्सी रखवा दी थी, जिस पर बैठकर श्रोता अपनी शंका का समाधान कर सके। एक दिन एक पण्डित ने प्रवचन के पश्चात् महर्षि जी के सम्मुख खड़े होकर कहा—"आप हम को नीचे आसन पर बैठने को कहते हैं। स्वयं ऊँचे आसन पर बैठते हैं। यह हमारा अपमान है। हमको भी बैठने के लिए ऊँचा आसन मिलना चाहिए।"

महर्षि जी ने कहा—"ऊँचे स्थान पर बैठने से कोई ऊँचा नहीं होता। यदि किसी राजा के मुकुट पर कोई मक्खी-मच्छर बैठ जाए तो वह ऊँचा कैसे हो सकता है? और यदि आप ऊँचे पर बैठना ही चाहते हैं तो इस कुर्सी को मेज पर रखकर बैठ जाइए।"

वह पण्डित फिर महर्षि जी से कोई वार्ता न कर सका।

103. पारस्परिक प्रेम का आधार एक साथ खाना नहीं है

महर्षि जी को सुनने के लिए सभी धर्मावलम्बी इच्छुक रहते थे। सरकारी अधिकारी भी उनकी सभा में उपस्थित रहते। पादरी क्लार्क उन्हें सुनने के लिए नित्य ही सभा में आते थे। एक दिन उन्होंने महर्षि जी से आग्रह किया कि क्यों न हम एक साथ बैठकर भोजन करने की व्यवस्था करें। ऐसा करने से आपसी प्रेम में बढ़ोतरी होगी। उनकी बात सुनकर महर्षि जी मुस्कराए और बोले—"आप और रोमन कैथोलिक एक ही साथ बैठकर खाते हैं, शिया और सुन्नी मुसलमान एक ही बर्तन में एक साथ बैठकर खाते हैं, फिर उनमें तो झगड़े कभी होने ही नहीं चाहिएँ?" क्लार्क महोदय आगे कुछ नहीं बोल सके।

104. ब्रह्मचर्य का चमत्कार

पंजाब के विभिन्न नगरों में प्रचार करते हुए सन् 1877 में महर्षि जी जालन्धर पहुँचे। उनकी सभा में सरदार विक्रमसिंह जी भी आया करते थे। वे दो घोड़ों वाली बग्घी में बैठकर आते। एक दिन महर्षि जी ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में उपदेश दे रहे थे। प्रवचन के अन्त में विक्रमसिंह जी ने महर्षि जी से निवेदन किया—''क्या सचमुच ब्रह्मचर्य में इतनी शक्ति है जितनी आपने वर्णित की है?''

महर्षि जी ने उत्तर दिया—''हाँ, ब्रह्मचर्य में इतनी ही शक्ति होती है।''

विक्रमसिंह जी बोले—''महर्षि जी आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें आपमें तो इतनी शक्ति प्रतीत नहीं होती।''

महर्षि जी उस समय कुछ नहीं बोले। सत्संग के पश्चात् विक्रम-सिंह घर को जाने लगे। उन्होंने घोड़ों को हाँका, परन्तु वे आगे नहीं बढ़े।

कई कोड़े लगाने के बाद भी घोड़े टस से मस नहीं हुए। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो आश्चर्य से महर्षि जी को देखते रहे। महर्षि जी बग्घी का पहिया पकड़े खड़े थे। विक्रम सिंह बग्घी से नीचे उतरे और महर्षि जी के चरण छूकर बोले—''मुझे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया है, महाराज!''

105. ज्ञानी भी, अज्ञानी भी

गुजरात के डॉ० विशनदास यद्यपि वेदान्ती थे, परन्तु महर्षि जी की विद्वत्ता से वे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने महर्षि जी से निवेदन किया कि लाहौर से निवृत्ति पाकर गुजरात की जनता को भी उपकृत करने की कृपा करें। महर्षि जी पौष सुदी नवमी, संवत् 1934 को गुजरात पहुँच गए। एक दिन दमदमे में विश्राम किया। अगले दिन फतहनगर जाकर ठहर गए। प्रवचनों के पश्चात् पण्डित, पादरी और मौलवी विभिन्न धार्मिक विषयों पर चर्चा करते और शंका का समाधान महर्षि जी से कराते। महर्षि जी उस समय तक समझाते जिस समय तक जिज्ञासु की जिज्ञासा शान्त न हो जाती। महर्षि जी अपने तर्कों और प्रमाणों से मिथ्यावादियों के मुँह बन्द कर देते। एक दिन कुछ लोगों ने परामर्श किया कि दयानन्द से कोई ऐसा प्रश्न पूछा जाए कि वे निरुत्तर हो जाएँ। उन्होंने निश्चय किया कि अगली सभा में महर्षि जी से पूछें कि आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी ? यदि उन्होंने कहा कि हम तो ज्ञानी हैं, तो हम उनसे कहेंगे कि आप तो घमण्डी हैं। विद्वान् कभी घमण्डी नहीं होते। यदि उन्होंने कहा कि अज्ञानी हैं तो हम झट कह देंगे कि फिर दूसरों को आप क्या शिक्षा देंगे ? ऐसा प्रश्न सोच कर वे बहुत प्रसन्न हुए और महर्षि जी के पास पहुँच गए। उनके समीप बैठकर एक ने प्रश्न किया—''महर्षि जी आप ज्ञानी हैं कि अज्ञानी ?''

महर्षि जी ने तुरन्त उत्तर दिया—''मैं ज्ञानी भी हूँ और अज्ञानी भी।''

पण्डितों में से एक ने फिर प्रश्न किया—''दोनों कैसे हो सकते हैं आप ?''

''जिन विषयों को मैं जानता हूँ, उनमें ज्ञानी हूँ, जिन विषयों को मैं नहीं जानता, उनमें अज्ञानी हूँ।''

पण्डितों के पास और कोई प्रश्न नहीं था। वे चुपचाप उठकर चले गए। मार्ग में चर्चा कर रहे थे कि महर्षि जी को विद्वत्ता में परास्त करना सम्भव नहीं है।

106. जब वेद की प्रामाणिकता की सिद्धि में पत्थर मिले

फतहनगर से महर्षि जी वजीराबाद चले गए। पौराणिक पण्डितों को जब उनके आगमन की सूचना मिली तो वे वहाँ से भाग निकले। कुछ उद्दण्डी लोगों ने वासुदेव नाम के शाक्त पण्डित को रुपयों का लोभ देकर शास्त्रार्थ करने के लिए महर्षि जी के पास भेज दिया और स्वयं उसके पीछे-पीछे हो लिये। इससे पूर्व उस नगर के लोगों ने ऐसा वाद नहीं देखा था, इसलिए हजारों लोग वहाँ उपस्थित हो गए। वाद का विषय मूर्तिपूजा रखा गया। वासुदेव ने मूर्तिपूजा का समर्थन किया तो महर्षि जी ने उससे वेद का प्रमाण माँगा। उसको वेदों का ज्ञान नहीं था। मूर्तिपूजा के समर्थन में उसने एक श्लोक पढ़ दिया। महर्षि जी ने कहा कि यह वेद-मन्त्र नहीं है। महर्षि जी उन दिनों वेद अपने साथ रखते थे। उन्होंने वासुदेव से कहा—''वेद प्रस्तुत हैं। इनमें यह श्लोक दिखाइए जो आप ने बोला।'' वेदों को देखकर उसकी बोलती बन्द हो गई। इससे आहत हुए हुड़दंगियों ने हुड़दंग कर दिया। उन्होंने महर्षि जी के ऊपर ईंट और पत्थर फेंके। महर्षि जी को वेद-ग्रन्थों की चिन्ता थी। उन्हें सुरक्षित लेकर अपने आवास पर आ गए। उन दिनों वे राजा फकीरुल्ला के बगीचे में ठहरे हुए थे। बाद में दंगाई वहाँ तक भी पहुँचे, पर कुछ बिगाड़ न सके।

107. जन-कल्याण में मान-अपमान नहीं

वजीराबाद से महर्षि जी गुजराँवाला गए। उन दिनों वे 'आर्योद्देश्य-रत्नमाला' के विषयों पर ही अपने प्रवचन देते थे। अन्त में श्रोताओं की शंकाओं का समाधान भी करते थे। सत्संग से बचा समय महर्षि जी वेदभाष्य में लगाते थे। गुजराँवाला में उन दिनों ईसाइयों का बड़ा प्रभाव था।

पादरियों ने स्वयं ही महर्षि जी से शास्त्रार्थ करने की तैयारी की। स्थान ईसाइयों की एक पाठशाला रखा गया। स्थान सीमित था, इसलिए दर्शकों को टिकट देकर अन्दर आने दिया गया। महर्षि जी की युक्तियों

और तर्कों के सामने पादरियों की एक न चली। उस शास्त्रार्थ को सुनने के लिए वजीराबाद से वे लोग भी आए थे, जिन्होंने वहाँ महर्षि जी पर पत्थर बरसाए थे। पादरियों को यह जानकारी थी, इसलिए उन्होंने वजीराबाद के लोगों को अन्दर नहीं जाने दिया। उदारमना स्वामी जी को जब यह जानकारी मिली तो उन्हें भी आदर सहित अन्दर बुलवा लिया।

जब महर्षि जी अपने निवास पर आ गए तो एक व्यक्ति उनके समीप आया और उनके चरण छूकर सजल नेत्रों से क्षमा-याचना करने लगा। उसने कहा—''महाराज मैंने आपको समझने में भूल की। वजीराबाद में मेरे ही कारण आपका अपमान हुआ। आप विद्वान् हैं और दयालु भी। मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए।''

महर्षि जी को उसे पहचानने में देर नहीं लगी। वह वासुदेव पण्डित था। महर्षि जी ने उसे स्नेह से उठाया और कहा—''तुमने अज्ञानता में ऐसा किया है। मैं ऐसी बातों का बुरा नहीं मानता हूँ। जन-कल्याण के कार्यों के लिए मान-अपमान का ध्यान नहीं रखना चाहिए।''

वासुदेव कृतज्ञ हुआ।

108. समालोचना करता हूँ, आलोचना नहीं

महर्षि जी जिस नगर में भी ठहरते, नित्य नियम से प्रातः-सायं भ्रमणार्थ अवश्य जाते। कई बार उसी समय बहुत से सज्जन अपनी शंकाओं का समाधान करवाते, प्रश्न पूछते। एक दिन भ्रमण के समय पादरी मैकी महोदय से महर्षि जी की भेंट हो गई। शिष्टाचार के पश्चात् पादरी महोदय ने महर्षि जी से कहा—''महाराज, आप ईसाई धर्म का खूब खण्डन करते हैं। ऐसा न किया करें।''

महर्षि जी ने उन्हें समझाया—''मैं खण्डन कहाँ करता हूँ, जो बाइबिल में लिखा है, उसे दोहराता हूँ। वैसे भी मैं कभी आलोचना नहीं करता, समालोचना करता हूँ। मुझे न किसी से ईर्ष्या है और न द्वेष। जिस बात के कहने से मनुष्यों का लाभ होता है, उसे मैं निःसंकोच कह देता हूँ।''

मैकी महाशय ने और कोई प्रश्न नहीं किया।

109. सत्य का उपदेश मेरा धर्म

महर्षि जी पुनः लाहौर लौट गए थे। इस बार उनके ठहरने की व्यवस्था नगर से बाहर उद्यान में बनी कोठी में की गई। यह उद्यान नवाब निवाजिश अली खाँ का था। महर्षि जी पक्षपात रहित हो स्वतन्त्र मति से उपदेश करते। उपदेश जिनके अनुरूप नहीं बैठता वे ही विरोध में खड़े हो जाते और उद्दण्डता पर उतर आते, परन्तु महर्षि दयानन्द किसी के भी व्यवहार से न कभी उत्तेजित होते थे और न ही किसी के दबाव से अपने विषय में परिवर्तन करते।

स्वामी जी को नवाब की कोठी में ठहराया गया। उन दिनों महर्षि जी इस्लाम पर चर्चा कर रहे थे। मुसलमान उनकी समीक्षात्मक टिप्पणियों से असन्तुष्ट हो गए। एक दिन प्रवचन के अन्त में एक मुसलमान ने महर्षि जी से कहा—''नवाब साहब ने रहने के लिए अपनी कोठी दी। आपने यहीं ठहरकर इस्लाम पर कटु चर्चा करनी आरम्भ कर दी। वे आप से नाराज हो सकते हैं।''

महर्षि जी उत्तर में बोले—''कोई मुझ से प्रसन्न हो या अप्रसन्न। सत्य का उपदेश देना मेरा धर्म है, जिसे मैं किसी भी दबाव में आकर नहीं छोड़ सकता।''

उस महाशय ने आगे कोई चर्चा नहीं की। लाहौर से महर्षि जी अमृतसर पधारे। सरदार भगवान सिंह के निवास पर उनके रहने की व्यवस्था की गई। वह स्थान काफ़ी विस्तृत था। एक ही साथ हजारों व्यक्ति उसमें बैठ सकते थे।

110. अज्ञानी हैं, क्षमा कर दें

अमृतसर में आने की सूचना जब वहाँ के पौराणिक पण्डितों को मिली तो उन्होंने महर्षि जी का विरोध करने की योजनाएँ बनानी आरम्भ कर दीं। वेद-वेदान्तों की उन्हें जानकारी नहीं थी, इसलिए उन विषयों पर चर्चा करना उनके सामर्थ्य की बात नहीं थी। शास्त्रार्थ के नाम पर उन्होंने एक नाटक रचा। महर्षि जी को शास्त्रार्थ करने के लिए सूचना भिजवा दी

गई। समारोह का स्थल सरदार भगवान सिंह जी का आवास ही तय किया गया। शास्त्रार्थ से पूर्व ही कई हजार दर्शक और श्रोता वहाँ एकत्रित हो गए। निश्चित समय पर महर्षि जी बाहर एक कुर्सी पर विराजमान हो गए। उनके सामने कुछ कुर्सियाँ और रखवा दी गईं, जिससे आमने-सामने बैठकर चर्चा-परिचर्चा सुविधापूर्वक होती रहे। कुछ समय बाद पण्डित समुदाय दल-बल सहित आ उपस्थित हुआ। पण्डित लोग आगे-आगे चल कर आए। पीछे उनके भक्त उनके जयकारे लगाते हुए आ रहे थे। पण्डित लोग कुछ पोथियाँ भी अपने संग लिये हुए थे। संख्या में लगभग आधे दर्जन लोग रहे होंगे। वे सभी महर्षि जी के सामने विराजमान हो गए। शास्त्रार्थ अभी आरम्भ हुआ भी नहीं था कि उनके साथ आए हुड़दंगियों ने महर्षि जी के ऊपर ईंट-रोड़े, पत्थर, राख और मिट्टी फेंकना आरम्भ कर दिया। हुल्लड़ मच गया। राख और मिट्टी के उड़ने से कुछ भी दिखाई नहीं देता था। व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस के जवान वहाँ विद्यमान थे। उन्होंने ज्यों ही दंगाइयों को पकड़ने का प्रयास आरम्भ किया उसी समय वे तथाकथित पण्डित धूल-धूसरित वातावरण का लाभ उठाकर चुपचाप भाग खड़े हुए। सभा विसर्जित हो गई। सज्जन लोगों ने उनकी बड़ी भर्त्सना की। श्रद्धालु भक्त जब उन पण्डितों को पकड़ कर दण्ड देने का उपक्रम करने लगे तो महर्षि जी ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया। महर्षि जी ने कहा—''ऐसे अज्ञानी लोगों को राह दिखाने के लिए तो हम यह सारा श्रम कर रहे हैं। इन्हें ही दण्ड देंगे तो फिर हमारे इस उद्यम से क्या लाभ ? परहित के कार्यों के लिए ऐसा सब सहना पड़ता है। जब ये लोग समझ जाएँगे, तब ये ही लोग सम्मान करेंगे, फूल बरसाएँगे।''

111. माँगने में शोभा नहीं

महर्षि जी समझते थे कि समाज-सुधार के बिना देश का उत्थान सम्भव नहीं है इसलिए वे अपने प्रवचनों में ऐसे प्रसंगों को अछूता नहीं छोड़ते थे। उनके प्रवचन इतने युक्ति-युक्त होते थे कि सभाओं में

राज्याधिकारियों के अतिरिक्त दूसरे धर्मावलम्बी भी रुचि रखते थे। एक प्रवचन में निर्मले साधु उपस्थित हुए। वे सब भिक्षा-वृत्ति से अपनी जीविका चलाते थे। उन्हें देखकर महर्षि जी ने कहा—''जिस देश में लाखों लोग रात में निराहार सो जाते हों, बच्चों को स्कूल जाने की सुविधा न हो, स्त्रियाँ पूरी जिन्दगी अभाव में गुजार देती हों, जिन्हें तन ढकने के लिए पूरा वस्त्र भी न मिलता हो, जहाँ अनाज के एक-एक दाने के लिए लोग तरसते हों, वहाँ लोटे और तूम्बे लेकर माँगना-खाना शोभा की बात नहीं है। सभी को परिश्रम करके ही अपनी आजीविका चलानी चाहिए।''

अमृतसर में प्रचारकार्य सम्पन्न करके महर्षि जी लुधियाना, अम्बाला में प्रवचन करते हुए श्रावणी बदी 15, संवत् 1935 में रुड़की नगर में जा विराजे।

112. परमात्मा का उपदेश सब के लिए

एक ओर महर्षि जी धर्म के नाम पर देश में व्याप्त पाखण्ड से जूझ रहे थे, दूसरी ओर वे देश से छुआछूत, जातिभेद, असमानता की भावना और ऊँच-नीच के भेद के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। उनका मानना था कि ऐसा किए बिना देश प्रगति की राह पर नहीं चल सकेगा, खुशहाल नहीं हो सकेगा, इसलिए वे सदैव जागरूक रहते थे। महर्षि जी रुड़की में श्री शम्भुनाथ जी के बंगले पर ठहरे हुए थे। एक दिन उनके प्रवचन में सफरमैना पल्टन का एक मजहबी सिक्ख भी उन्हें सुनने के लिए आया। वह दत्तचित्त होकर महर्षि जी का प्रवचन सुन रहा था कि तभी वहाँ महर्षि जी की डाक लेकर मुनीर खाँ डाकिया आ गया। उसने उस मजहबी सिक्ख को वहाँ बैठे देखा तो क्रोध में आ गया। उसने उसे खरी-खोटी सुनाई, अपशब्द कहे। उसे कहा कि तू नीच कुल का है तुझे यहाँ नहीं बैठना चाहिए। उठ चल, निकल यहाँ से। वह सिक्ख युवक अपमान भरे शब्द सुनकर रुआँसा हो गया। महर्षि जी ने ऐसा करने से उस डाकिए को रोका और उस सिक्ख युवक को अपने पास बुलाकर सान्त्वना दी—''सभी ईश्वर के बेटे हैं। तुम्हें उदास होने की जरूरत नहीं है। परमात्मा का उपदेश सब के लिए है। आप निःसंकोच नित्य-प्रति उपदेश सुनने के

लिए आया करें।'' महर्षि जी के स्नेह-भरे वचनों का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उनका भक्त हो गया और नियमपूर्वक उनके उपदेशों को सुनने के लिए आता रहा।

113. आत्मा ब्रह्म नहीं

महर्षि जी के पास जिज्ञासु अपनी शंका का समाधान कराने और विभिन्न धर्मावलम्बी अपने पक्ष के प्रमाण प्रस्तुत करने हेतु आते रहते थे। भोटूसिंह नाम के वेदान्ती ने महर्षि जी से पूछा—''आप अद्वैतवाद को मानते हैं?''

''नहीं।'' महर्षि जी ने कहा।

''क्यों?'' भोटूसिंह ने प्रश्न किया

''इसलिए कि जीवात्मा और ब्रह्म दोनों भिन्न हैं।'' महर्षि जी ने बताया। भोटूसिंह बोले—''यदि आप परा विद्या जानते होते तो ऐसा न कहते। ब्रह्म और जीवात्मा एक ही होते हैं।''

''फिर तो आप भी ब्रह्म हुए?'' महर्षि जी ने पूछा।

''हाँ।'' भोटूसिंह ने स्पष्ट किया।

''आपके विचार से सृष्टि का रचयिता कौन है?'' महर्षि जी ने पूछा।

भोटूसिंह ने कहा, ''ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई नहीं।''

''और ब्रह्म आप भी हैं।'' महर्षि जी मुस्कुराए और बोले—''ठीक है तो आप एक मरी मक्खी को जीवित करके दिखाइए।''

भोटूसिंह बेचारा क्या कर सकता था। मौन हो जाने के अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं सूझा।

114. समयबद्धता

महर्षि जी की दिनचर्या संयमित थी और कार्यक्रम अनुशासित। सत्संग का समय होने पर वे श्रोताओं की प्रतीक्षा किए बिना अपना प्रवचन आरम्भ कर देते थे। एक दिन उनके दो भक्त पण्डित बलदेव

सहाय और उमरावसिंह सत्संग के समय उपस्थित थे। उन्होंने महर्षि जी से श्रोताओं की प्रतीक्षा करने के लिए प्रार्थना की, परन्तु महर्षि जी ने समय पर अपना प्रवचन आरम्भ कर दिया। इसका इतना प्रभाव हुआ कि उस दिन के पश्चात् सभी श्रोता समय पर उपस्थित होने लगे।

115. महर्षि के बल की परीक्षा

रुड़की (उ०प्र०) में प्रचार-कार्य सम्पन्न करके महर्षि अलीगढ़ होते हुए मेरठ पहुँच गए। ब्रह्मचर्य और उसकी महिमा का बखान महर्षि जी अपने प्रवचनों में यदा-कदा करते रहते थे। मेरठ में महर्षि जी के अनुयायियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। बेनीप्रसाद के मन में यह जिज्ञासा हुई कि महर्षि जी भी ब्रह्मचारी हैं। इनके बल की परीक्षा की जानी चाहिए। उन्होंने अपने जैसे साथी लिये और रात्रि के समय महर्षि जी की सेवा में पहुँच गए। महर्षि जी ऊँचे आसन पर बैठे हुए थे। बेनीप्रसाद जी ने महर्षि जी से निवेदन किया कि महाराज हमें अपने पैर दबाने की आज्ञा दीजिए। महर्षि जी को उनकी भावना समझते देर न लगी। महर्षि जी ने मुस्कुराते हुए कहा—"ठीक है, यदि आप मेरे पैर दबाना चाहते हैं तो पहले सब मिलकर मेरे पैर को उठाइए।" उन्होंने अपना एक पैर धरती पर जमा दिया। सभी साथी एक साथ मिलकर महर्षि जी का पैर उठाने लगे परन्तु उनसे उनका पैर हिला नहीं। वे प्रयास करके थक गए तो लज्जित होकर शान्त बैठ गए।

116. देश की प्रथम गोशाला

राव युधिष्ठिर के निमन्त्रण पर महर्षि दयानन्द संवत् 1935 में शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (25 दिसम्बर सन् 1878) को रेवाड़ी पहुँचे। उन्होंने नगर से बाहर तिल्लापुर के उद्यान में अपना आसन जमा लिया और उपदेश का क्रम आरम्भ कर दिया। महर्षि जी की सभा में श्रोताओं की संख्या खूब बढ़ी। प्रवचनों में श्रोताओं की रुचि और श्रद्धा देख महर्षि ने वहाँ आर्यसमाज की स्थापना कर दी और साथ ही गोशाला का निर्माण भी करवा दिया। गोशाला का प्रबन्ध राव युधिष्ठिर को सम्भलवा दिया। इस

गोशाला को देश की प्रथम गोशाला होने का सौभाग्य प्राप्त है।

ऋषि दयानन्द सच्चे गोभक्त थे। गौ की महिमा को रेखांकित करने के लिए उन्होंने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश से भिन्न 'गोकरुणानिधि' नाम की पुस्तक की रचना की। जिसे पढ़कर प्रत्येक मानव को अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

117. महर्षि का हरिद्वार में पुनः आगमन

(कुरीतियों का निवारण तथा ब्रह्मवाद का समाधान)

फाल्गुन शुक्ला 6, संवत् 1935 (27 फरवरी सन् 1879) को हरिद्वार में लगे कुम्भ मेले में विधिवत् विज्ञापित करा दिया गया कि जो विद्वान् महानुभाव महर्षि दयानन्द से धर्म-चर्चा करना चाहें, वे सादर आमन्त्रित हैं।

इस अवसर पर महर्षि जी हरिद्वार में मूला मिस्त्री के खेत में ठहरे हुए थे। साथ में यहां छोटा-सा बगीचा था। यहीं भूख में महर्षि जी ने कच्चे बैंगन भी खाये। आजकल यह स्थान आर्यनगर ज्वालापुर (हरिद्वार) में महर्षि दयानन्द स्मारक के नाम से जाना जाता है। 27 फरवरी 1879 में अपने प्रवचनों में बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, छुआछूत जैसी कुरीतियों का विरोध करते थे। वे पाखण्डों के विरोध में भी खूब प्रचार करते थे। विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा का समर्थन करते थे। हरिद्वार में लगे इस पूरे मेले में उनके आगमन की सूचना वायुगति से पहुँच गई।

एक दिन आनन्दवन नाम के एक ब्रह्मवादी वृद्ध साधु महर्षि दयानन्द के द्वार पर आ खड़े हुए। महर्षि जी ने उन्हें देखा तो तुरन्त खड़े हो गए और अन्दर ले जाकर आदर सहित उन्हें आसन पर बैठाया। उन्होंने द्वैताद्वैत पर चर्चा करने की इच्छा व्यक्त की। महर्षि जी तो ऐसी वार्ताओं के लिए हर समय उद्यत रहते थे। कुछ ही देर पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया। साधु आनन्दवन संस्कृत के सुलझे हुए पण्डित थे। विनम्र भाव से वार्ता होती रही। भोजन का समय हो गया। भोजनालय से बुलावा आया, पर आनन्दवन जी भोजन के लिए उद्यत नहीं हुए। उन्होंने कहा—"जब तक विषय का निर्णय नहीं हो जाता तब तक मैं भोजन नहीं करूँगा। लगभग

दो बजे साधु आनन्दवन महर्षि जी की विद्वत्ता के सामने नतमस्तक हो गये और उन्होंने महर्षि जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अपने साथ आए अपने शिष्यों से कहा—''महर्षि जी का ज्ञान अगाध है। उनके प्रमाण अकाट्य हैं। मुझ पर चढ़ा ब्रह्मवाद का आवरण स्वामी जी के तर्कों के सामने हट गया। मुझे नया प्रकाश मिला। स्वामी जी द्वारा बताया गया मार्ग ही सत्य है। आपको भी इस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।''

आनन्दवन की आयु अस्सी वर्ष से कम नहीं होगी। वे इस अवस्था में भी महर्षि जी के प्रवचन सुनने के लिए नित्य ही पण्डाल में उपस्थित होते थे।

118. वैदिक धर्मी के लिए सदाचार आवश्यक है

उन्हीं दिनों जम्मू-कश्मीर के महाराजा रणवीरसिंह ने महर्षि जी की सेवा में एक पत्र भेजकर विनम्र आग्रह किया कि वे किसी ऐसे ग्रन्थ की रचना करें जिससे यह सिद्ध हो कि किसी भी धर्म का कोई व्यक्ति यदि हिन्दू धर्म को ग्रहण करना चाहता हो तो निःसंकोच कर सके। उसके साथ प्रीतिपूर्वक व्यवहार किया जाए। महर्षि जी ने पत्रवाहक के द्वारा पत्र भेजकर महाराजा को अवगत कराया कि आपका विचार सही है। कोई भी मतावलम्बी यदि सदाचारी हो तो वैदिक धर्म को ग्रहण कर सकता है। उन सभी को सहभोज में सम्मिलित होने का अधिकार है। हाँ, एक-दूसरे की जूठन कभी न खानी चाहिए, इससे रोग लगने की सम्भावना रहती है।

हरिद्वार में महर्षि जी अस्वस्थ हो गए। विश्राम की दृष्टि से उन्होंने देहरादून चले जाना उचित समझा।

119. योग में बड़ी शक्ति है

देहरादून से महर्षि जी सहारनपुर पधारे। उसी नगर में यूरोपीय विद्वान् कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की श्रीसेवा में उपस्थित हुए। वे महर्षि जी के व्यक्तित्व और विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें अपना गुरु स्वीकार कर लिया। वे स्वयं को आर्य कहने लगे और विधिवत् यज्ञोपवीत धारण कर लिया। वे श्रद्धापूर्वक उनके प्रवचन सुनते और उनके साथ

घण्टों धर्म-चर्चा करते। एक दिन अल्काट महाशय ने महर्षि जी से योग के सम्बन्ध में पूछा। महर्षि जी ने उत्तर दिया कि योग में बड़ी शक्ति है।

वे प्रसन्न हुए और यात्रा में महर्षि जी के संग हो लिये। मेरठ आ जाने के बाद भी वे महर्षि जी के समीप ही बने रहे और उनके सत्संगों का लाभ उठाते रहे। कभी-कभी वे स्वयं भी वेद-विषय पर व्याख्यान देने का प्रयास करते।

मेरठ से महर्षि जी अलीगढ़ की ओर प्रस्थान कर गए और कर्नल अल्काट एवं मैडम ब्लैवट्स्की उनसे आज्ञा लेकर मुम्बई चले गए।

अलीगढ़ से महर्षि जी छलेसर होते हुए मुरादाबाद (उ०प्र०) पहुँच गए। आर्य जनों के अनुरोध पर वहाँ आर्यसमाज की स्थापना कर दी और वहाँ से चलकर बदायूँ (उ०प्र०) पहुँचे, जहाँ वे नित्य प्रवचन करते रहे।

120. सत्य का प्रकाश मेरा धर्म है

भादो द्वादशी, संवत् 1936 को महर्षि जी बरेली (उ०प्र०) पहुँचकर लाला लक्ष्मीनारायण की कोठी में ठहर गए। उनके प्रवचनों में सामान्य जनों के अतिरिक्त उच्च सरकारी अधिकारी भी भाग लेते थे। एक दिन प्रवचन में महर्षि जी ने ईसाई धर्म के सम्बन्ध में कहा—''ये लोग कुमारी से पुत्र होना बताते हैं और उसके लिए परमात्मा को दोषी ठहराते हैं।''

इससे सभा में उपस्थित कमिश्नर साहब क्रोधित हो गए और लक्ष्मीनारायण जी को बुलाकर कहा—''अपने पण्डित को समझाइए। वे अपने व्याख्यानों में कठोरता न बरतें। हम लोग तो शिक्षित हैं। हिन्दू और मुसलमान भड़क गए तो स्वामी को भारी पड़ जाएगा।''

लक्ष्मीनारायण जी ने साहस करके यह सूचना महर्षि जी को दी। अगले दिन स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में स्पष्ट किया—''कुछ सज्जन मुझे कहते हैं कि सत्य न कहें। ऐसा करने से कलैक्टर साहब और कमिश्नर साहब रुष्ट हो जाएँगे।'' महर्षि जी ने गरजते हुए कहा—''चक्रवर्ती राजा भी चाहे कुपित क्यों न हो जाय, परन्तु दयानन्द सत्य का प्रकाश करने से नहीं रुक सकता।'' उन्होंने आगे कहा—''दयानन्द के

शरीर को नष्ट किया जा सकता है, परन्तु दयानन्द की आत्मा को छिन्न-भिन्न करना किसी के वश की बात नहीं है। अपने शरीर की रक्षार्थ दयानन्द सत्य के रास्ते से नहीं हट सकता।''

121. पादरी स्कॉट से वार्ता

पादरी स्कॉट शालीन व्यक्तित्व के धनी थे। तीन दिन तक बरेली के पुस्तकालय में महर्षि जी के साथ उनका लिखित शास्त्रार्थ हुआ। पादरी स्कॉट महर्षि जी से प्रभावित हुए और उनका प्रवचन सुनने के लिए उनकी सभा में आते रहे। एक दिन पादरी जी गिरजाघर में सत्संग होने के कारण सभा में नहीं आ सके। उस दिन महर्षि जी अपने सैकड़ों समर्थकों को साथ लेकर गिरजाघर जा पधारे। पादरी स्कॉट ने अपने आसन से उठकर महर्षि जी का स्वागत किया। उन्हें मंच पर उच्च स्थान पर बैठाया और गिरजा में महर्षि जी का प्रवचन कराया। व्यक्ति ईश्वर नहीं हो सकता, इस विषय पर महर्षि जी ने अपने विचार रखे।

122. जब परमात्मा की कृपा होगी

(मुंशीराम की महर्षि से भेंट)

संवत् 1936 (सन् 1879) में जिन दिनों महर्षि जी बरेली उत्तरप्रदेश में प्रचार कार्य कर रहे थे, उन्हीं दिनों नानकचन्द नगर कोतवाल थे। उनका बेटा कॉलेज में पढ़ रहा था। वह नास्तिक था। नानकचन्द जी पौराणिक थे। नित्य पूजा-पाठ अवश्य किया करते। उन्होंने ऋषि के उपदेश सुने तो गद्‌गद हो गए। उन्होंने समझ लिया कि पुत्र मुंशीराम ने यदि महर्षि दयानन्द के प्रवचन सुन लिये तो उसकी सारी शंकाओं का समाधान हो जाएगा, अतः एक दिन उसे महर्षि जी का प्रवचन सुनने के लिए तैयार कर लिया। स्वयं भी उसके साथ प्रवचन सुनने के समय उपस्थित रहे। ईश्वर के सम्बन्ध में महर्षि जी की युक्तियाँ सुन मुंशीराम के विचार ही बदल गए। उन्होंने महर्षि जी की दिनचर्या देखी। वे रात के समय भी महर्षि जी के उद्यान में पहुँचते। रात्रि का तीसरा पहर होता तो महर्षि जी भ्रमण के लिए जाते मिलते। कभी-कभी वे साधना में अवस्थित भी मुंशीराम

को मिले। फिर भी ईश्वर की सत्ता में उनका विश्वास नहीं लौट सका। यह बात उन्होंने महर्षि जी से भी कही। महर्षि जी ने उनसे कहा—''मैं तो युक्तियाँ ही दे सकता हूँ। परमात्मा में विश्वास तो तभी बनेगा, जब परमात्मा की आप पर कृपा होगी।''

123. लो, ये रहे वेद

बरेली में अपना कार्य समाप्त कर महर्षि जी आश्विन बदी चतुर्थी, संवत् 1936 को शाहजहाँपुर चले गए। उस नगर में मूर्तिपूजा विषय पर महर्षि जी का लक्ष्मण शास्त्री से शास्त्रार्थ हुआ। महर्षि जी ने कहा—''वेद में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है, कहीं हो तो दिखाइए।''

''वेद हैं ही नहीं तो उनमें कहाँ से दिखाऊँ? उन्हें तो शंखासुर दैत्य हरण कर ले गया।''

महर्षि जी जोर से हँसे। वेद की पोथियाँ उसके सामने रखते हुए बोले—''लो, ये रहे वेद। हमने शंखासुर का हरण कर इन्हें प्राप्त कर लिया है। शास्त्री महोदय वेदों के ओझल होने में हमारा प्रमाद ही कारण है।''

वेदों को देखकर लक्ष्मण शास्त्री चकित हो उनकी तरफ देखने लगा। वेदों के पृष्ठ पलटने का साहस भी वह नहीं जुटा पाया।

124. सत्य कहने में कोई भय नहीं

महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्भीक संन्यासी थे। अपनी बात को सरल-सपाट शब्दों में कहने से वे कभी नहीं चूकते थे। सभी जानते थे कि महर्षि जी किसी भी मत की उन बातों का खण्डन करते हैं जो अतार्किक, अव्यावहारिक और वेद-विरुद्ध हों।

महर्षि जी की प्रवचन-सभा चल रही थी। उसी मार्ग से डिप्टी कलैक्टर अलीजान जा रहे थे। वे भी महर्षि जी के प्रचार कार्य से अनभिज्ञ नहीं थे। उन्होंने अपनी सवारी रोकी और महर्षि जी से बोले—''अपने व्याख्यानों में आप बहुत कठोरता से काम लेते हैं। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। सभाओं में आपको सँभल कर बोलना चाहिए।''

महर्षि जी ने तपाक से उत्तर दिया—"हम असत्य कभी नहीं कहते। सत्य कहने में हमें कभी कोई भय नहीं है।"

कलैक्टर अलीजान ने आगे कुछ नहीं कहा। अपने रास्ते चले गए।

125. मेरे प्रवचन विरेचक औषध के समान हैं

महर्षि जी के समीप उपस्थित कई सज्जनों ने उनसे कहा— "महाराज, आपका खण्डन बड़ा कठोर होता है, इसे सुनकर श्रोता कष्ट पाते हैं। इसके परिणाम शुभ कैसे हो सकते हैं?"

महर्षि जी ने उन्हें समझाया—"जब रोग पुराना और जटिल हो तो चतुर वैद्य ऐसे रोगी को पहले विरेचक ओषधियाँ देते हैं। इस औषध से कई बार जी मिचलाने लगता है, घबराहट होने लगती है, परन्तु जब शरीर का मल निकल जाता है, उसका रोग ठीक हो जाता है, तब वह अच्छा अनुभव करता है। हमारे देश के निवासी अन्धविश्वासों, कुरीतियों, पाखण्डों के दोषों में फंसे हुए हैं। समाज रूढ़िग्रस्त हो दु:ख भोग रहा है। ऐसे में मेरे प्रवचन विरेचक औषध की तरह काम करते हैं। जब समाज दोष-मुक्त हो जाएगा तभी सुख व समृद्धि की ओर बढ़ेगा। रूढ़ियों, कुरीतियों और पाखण्डों के खण्डन से ही ऐसा सम्भव है।"

फर्रुखाबाद में स्कॉट नाम के मजिस्ट्रेट थे। वे सज्जन थे और धार्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे। महर्षि जी के लिए उनके हृदय में अति आदर की भावना थी। वे नित्य नियम से महर्षि जी के प्रवचन सुनने के लिए उनकी सभाओं में आते थे। किसी कारण महर्षि जी का प्रवचन न हो तो भी वे दर्शनार्थ श्रीसेवा में उपस्थित होते थे।

126. मन-मन्दिरों से मूर्तियाँ हटाता हूँ

फर्रुखाबाद (उ०प्र०) में महर्षि जी के भक्तों की काफी संख्या हो गई थी। बाजार के एक नुक्कड़ पर एक मढ़ैया बनी हुई थी, जिसमें श्रद्धालु दीप-धूप जलाते रहते थे। एक दिन कुछ भक्तों ने महर्षि जी से निवेदन किया—"महाराज, नगर के मजिस्ट्रेट श्री स्काट आपके परम भक्त हैं। आप उन्हें जरा संकेत भी कर देंगे तो मार्ग से यह मढ़ैया उठ

जाएगी।''

महर्षि जी ने उन्हें उत्तर दिया—''सुधार का यह मार्ग नहीं है। कई मुसलमान बादशाहों ने मन्दिर तुड़वाए तो क्या मूर्तिपूजा समाप्त हो गई है ? मूर्तियाँ तुड़वाना मेरा काम नहीं है। मैं तो लोगों के मन-मन्दिरों से मूर्तियाँ हटाना चाहता हूँ।''

आश्विन बदि, अष्टमी संवत् 1936 (सन् 1879) को महर्षि जी ने कानपुर नगर (उ०प्र०) में आकर अपना आसन जमाया। यहाँ के सज्जनों को अपनी पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित किया। यहाँ से चलकर महर्षि जी दानापुर पधारे। यहाँ के निवासी लम्बे समय से उनके दर्शनों के इच्छुक थे। महर्षि जी के नगर आगमन पर भक्तों ने विशाल शोभा-यात्रा निकाल कर उनका भव्य स्वागत किया।

127. थियोसोफिकल सोसायटी व आर्यसमाज में सिद्धान्त भेद

कर्नल अल्काट एवं मैडम ब्लैवट्स्की थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक थे। महर्षि जी के विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने उन्हें अपना गुरु मान लिया और महर्षि जी को उस सभा का प्रधान आचार्य स्वीकार किया। ऐसा करने में महर्षि जी की पूर्वानुमति नहीं ली गई थी। महर्षि जी को सभा का सभासद भी घोषित कर दिया गया। साथ ही यह भी विचार हुआ कि सभा को आर्यसमाज में सम्मिलित कर दिया जाए और थियो-सोफिकल सभाओं को आर्यसमाज की शाखाएँ समझा जाए, परन्तु पश्चात् वैचारिक व सिद्धान्त-भेद के कारण महर्षि जी ने ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।

मैडम ब्लैवट्स्की का ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं था। दूसरे वे लोग थियोसोफिकल सभा का सदस्य किसी भी मत के मानने वाले व्यक्ति को बनाने में कोई आपत्ति नहीं करते थे, जबकि आर्यसमाज के निर्धारित दस नियमों को मानने तथा पालन करने वाले व्यक्ति ही आर्यसमाज की सदस्यता प्राप्त कर सकते थे, इसलिए महर्षि जी ने थियोसोफिकल

सभा को आर्यसमाज में सम्मिलित करने के विचार को स्थगित कर दिया।

128. तोप का भय दिखाने पर भी वेद की श्रुतियाँ ही निकलेंगी

मेरठ से महर्षि जी ने सहारनपुर के रास्ते देहरादून के लिए प्रस्थान किया। वे सहारनपुर स्टेशन पर कुछ समय रुके और अपने भक्तों से संक्षिप्त वार्तालाप किया। उस समय उनके एक भक्त लाला भोलानाथ वैश्य ने चिन्तित होकर कहा कि महाराज जैनी आपको गिरफ्तार करा कर कारावास में डलवाना चाहते हैं। उन्होंने इस आशय का विज्ञापन छपवा दिया है। इस पर महर्षि जी मुस्कुराये और बोले—"भोलानाथ जी, मुझे कोई तोप के मुख पर बाँधकर भी पूछे कि सत्य क्या है? तब भी दयानन्द के मुख से वेद की श्रुतियाँ ही निकलेंगी।"

अजमेर से महर्षि दयानन्द ने रायपुर, ब्यावर, मसूदा, बनेडा आदि स्थानों पर वेद-प्रचार करते हुए कार्तिक सुदी पंचमी, संवत् 1938 (सन् 1881) को चित्तौड़ पहुँच कर गम्भीरी नदी के किनारे बने रुण्डेश्वर महादेव के मन्दिर में अपना आसन लगाया।

129. पण्डित लेखराम की महर्षि से भेंट

पण्डित लेखराम जी को वैदिक धर्म की सत्यता का निश्चय होने पर महर्षि दर्शन की उत्कृष्ट इच्छा मन में जागी। अत: वे पेशावर से चल कर 16 मई सन् 1881 रात्रि को अजमेर में सेठ फतेहमल की धर्मशाला में पहुँचे। प्रात: 17 मई को महर्षि जी के दर्शन किये। वार्तालाप से मार्ग का सब कष्ट भूल गये। पण्डित जी ने महर्षि जी से प्रश्न किया कि "ईश्वर और आकाश दोनों व्यापक होने से एक साथ कैसे रह सकते हैं?" महर्षि जी ने उत्तर देते हुए कहा—"देखो! यह पत्थर है। इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं?" इसी प्रकार जल, वायु, मिट्टी के उदाहरण देकर कहा कि जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है, वह उसमें व्यापक होती है। अत: ईश्वर और आकाश दोनों व्यापक हैं परन्तु ईश्वर आकाश से भी सूक्ष्म है अत: दोनों इकट्ठे रह सकते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रश्नों के उत्तर भी महर्षि जी

ने सन्तोषजनक दिये, जिससे पं० जी की सन्तुष्टि हो गई।

130. जन्मदात्री मातृशक्ति वन्दनीया है

संवत् 1938 (सन् 1881) में महर्षि के चित्तौड़ आगमन पर महाराणा सज्जन सिंह ने ठहरने की सुन्दर व्यवस्था की। महर्षि ने उन्हें राजधर्म का उपदेश दिया। महर्षि जी नित्य प्रात: और सायं भ्रमणार्थ जाया करते थे। सन्ध्या समय बहुत से सज्जन उनके साथ जाते और अपनी जिज्ञासा को शान्त करते। एक दिन भ्रमण के समय मार्ग में एक मन्दिर आया। मन्दिर के द्वार पर छोटे-छोटे बच्चे क्रीड़ा में व्यस्त थे। महर्षि जी मन्दिर के सामने पहुँचे तो उन्होंने करबद्ध होकर अपना सिर झुका दिया। साथ चल रहे एक पण्डित ने महर्षि जी से कहा—''महाराज, बेशक आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, पर देवताओं की श्रद्धा व्यक्ति को स्वयमेव अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। मन्दिर के द्वार के सम्मुख आते ही आपका मस्तक झुक गया।'' महर्षि जी तनिक रुके और उन बच्चों में से तन-उघरी एक छोटी बच्ची को उन्हें दिखाकर बोले—''देखिए, यह हमें जन्म देने वाली मातृशक्ति है। हमें इसे नमन करना ही चाहिए।''

सभी शान्त हो गए।

चित्तौड़ से महर्षि जी इन्दौर होते हुए पौष सुदी एकादशी, संवत् 1938 (सन् 1881) को मुम्बई नगर पहुँच गए। मुम्बई में उन्हें समुद्र के तट पर बालुकेश्वर गोशाला नाम के स्थान पर आदर सहित ठहरा दिया गया। इन दिनों आर्यसमाज मुम्बई का वार्षिकोत्सव हो रहा था। महर्षि जी इस उत्सव की श्रीवृद्धि के लिए वहाँ पधारे थे।

131. भेदभाव उचित नहीं

महर्षि जी सैद्धान्तिक आधार पर किसी से कोई समझौता नहीं करते थे, परन्तु वे किसी भी धर्मावलम्बी से कभी घृणा नहीं करते थे और अपने समीप आए भद्रपुरुषों का यथोचित आदर-सत्कार करते तथा उनसे मिलकर प्रसन्नता का अनुभव करते थे। एक दिन एक सज्जन महर्षि जी से धर्म-चर्चा करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने दाढ़ी रखी हुई थी, इस कारण

महर्षि जी के एक गुजराती शिष्य ने आगन्तुक को मुसलमान समझकर पानी गिलास में न देकर दोने में दिया। महर्षि जी ने उस समय तो शिष्य से कुछ नहीं कहा, परन्तु जब वे चले गये तो महर्षि जी ने उससे दोने में पानी पिलाने का कारण पूछा। शिष्य ने कहा—''महाराज, मुसलमान को गिलास में पानी देने से पात्र भ्रष्ट हो जाता, इसलिए मैंने उसे दोने में जल दिया।''

महर्षि जी ने उसे समझाया—''तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। यद्यपि वह मुसलमान नहीं था, परन्तु मुसलमान भी होता तो भी उसे गिलास में ही पानी देना चाहिए था। सभी ईश्वर की प्रजा हैं। आगे से इस बात का ध्यान रखना। मानवों के बीच भेदभाव बरतना उचित नहीं है।''

132. देश-सेवा का चिन्तन

विद्वान् लोग वार्ता के लिए महर्षि जी के आवास पर आते रहते थे। अंग्रेजी के एक विद्वान् मोनियर विलियम्स उन दिनों मुम्बई में उपस्थित थे। महर्षि जी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्होंने महर्षि जी से कहा—''महात्मन्, आप का ज्ञान मानव हितकारी है। इसका लाभ यूरोपवासियों को भी मिलना चाहिए। यदि आप सहमत हों तो वहाँ चलने की सम्पूर्ण व्यवस्था मैं कर दूँगा। आप आदेश करें।''

महर्षि जी ने गम्भीरता से कहा—''आपका विचार निःसंदेह अच्छा है, परन्तु अभी मेरे देश के लोग अज्ञान के अँधेरे में भटक कर दुःखों को भोग रहे हैं। देशवासियों को अन्धविश्वास और रूढ़ियों से निकाल कर सुखों की ओर ले जाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। दूसरे यह भी आवश्यक है कि वहाँ के वासियों को अपने विचार देने के लिए मुझे अंग्रेजी भाषा सीखनी चाहिए, जिसके लिए काफी समय की आवश्यकता है। इतने समय में मैं प्रचार का बहुत-सा काम कर सकूँगा।

''तीसरी बात यह भी है कि सत्य के प्रचार-कार्य में बड़ी बाधाएँ हैं। बहुत से दुराग्रही मेरे प्राणों के ग्राहक हो गए हैं। इस शरीर में प्राण कब तक बने रहेंगे इसका कोई पता नहीं, इसलिए मैं अपना जीवन देशवासियों

की उन्नति के लिए अर्पित करना चाहता हूँ।''

मुम्बई नगर से खण्डवा, रतलाम और चित्तौड़ में धर्म-चर्चा करते हुए महर्षि जी ने श्रावण बदी त्रयोदशी, संवत् 1939 (सन् 1882) को उदयपुर-महाराजा सज्जनसिंह के नौलखा उद्यान के राजमन्दिर में अपना डेरा डाल दिया। राणा सज्जनसिंह अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों, अधिकारियों और श्रेष्ठियों के साथ श्रीदर्शनों को आए। इसके पश्चात् वे नित्य ही महर्षि जी के प्रवचन सुनने के लिए सभा में उपस्थित होते। वे महर्षि जी के समीप बैठकर योग-दर्शन और मनुस्मृति का भी अध्ययन करते थे।

133. महर्षि की उच्च योगसाधना

उन्हीं दिनों एक विरक्त बिहारी पण्डित श्री सहजानन्द महर्षि जी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने श्रीचरणों में संन्यास की दीक्षा लेने की प्रार्थना की। महाराज ने कुछ समय उन्हें समीप रख कर परखा और योग्य समझकर विधिवत् संन्यास की दीक्षा प्रदान कर दी। उदयपुर में सहजानन्द जी काफी समय श्रीसेवा में लगे रहे। उन्होंने अपनी सहजता, सेवा-भाव और विनम्रता से महर्षि जी की अति समीपता प्राप्त कर ली थी। योग-साधना में बैठे गुरुवर के सौम्य मुखमण्डल को निहार वे कृत-कृत्य हो जाते। महर्षि जी के समीप रहकर उन्होंने पाया कि ऋषि दयानन्द रात्रिकाल में मात्र चार घण्टे ही विश्राम में व्यतीत करते हैं। शेष समय वे योग-साधना में स्वयं को अवस्थित रखते हैं। चौबीस घण्टे की योग- समाधि में लीन भी सहजानन्द ने उन्हें देखा। समाधि अवस्था में उन्हें बहुत-सी भावी घटनाओं की जानकारी हो जाती थी, जिन्हें वे कभी-कभी अपने भक्तों के सम्मुख प्रकट कर दिया करते थे। योग की उच्च स्थितियों को उन्होंने प्राप्त कर लिया था।

134. लौकिक प्रलोभन का कोई मूल्य नहीं

सन् 1882 (संवत् 1939) में महर्षि उदयपुर पधारे। वहां पर राणा सज्जनसिंह जी ने एक दिन श्रीचरणों में निवेदन किया कि यदि आप

मूर्तिपूजा का खण्डन करना त्याग दें तो आप के चरणों में एकलिंग महादेव की गद्दी अर्पित करने को उद्यत हूँ। आप उसके महन्त बनें। इस मन्दिर के पास लाखों की सम्पत्ति है, उसकी नियमित आय है। उस सम्पूर्ण सम्पदा के एकमात्र आप ही स्वामी हो जाएँगे।

राणा उदयपुर का यह वाक्य सुनकर महर्षि जी की मुखमुद्रा बदल गई। उन्होंने आवेश में कहा—''यह तुच्छ प्रलोभन देकर मुझे सत्यमार्ग से विमुख करना चाहते हो। यह सम्पूर्ण सृष्टि उस परमपिता परमात्मा की सत्ता है। जिस सम्पदा की तुम बात करते हो उस को मैं एक दौड़ लगाकर पार कर सकता हूँ। मैं परमपिता परमात्मा की अपरिमित सत्ता में विचरण करता हूँ। लौकिक प्रलोभन का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं।''

इस पर राणा सज्जनसिंह लज्जित हुए और महाराज से क्षमा-याचना की।

135. परोपकारिणी सभा का गठन

महर्षि जी के हृदय में परोपकारिणी सभा के गठन का विचार काफी समय से आ रहा था। उदयपुर में वह पूर्ण हुआ। महर्षि जी ने अपने अनुयायियों और भक्तों की सहमति से परोपकारिणी सभा की स्थापना फाल्गुन बदी 5, मंगलवार संवत् 1939 (27 फरवरी सन् 1883 में) कर दी। पुस्तक-लेखन आदि के लिए जो सम्पत्ति एकत्र हुई थी, वह सब परोपकारिणी सभा के नाम कर दी। इस सभा का अध्यक्ष-पद राणा सज्जनसिंह जी को सौंप दिया गया। मंत्री कविराजा श्यामलदास को बनाया। इस सभा के कुल तेईस सदस्य बनाए गए। महर्षि जी ने स्वयं एक अधिकार पत्र और नियम लिखकर सभा को दे दिए।

महर्षि जी उन दिनों भी वेद-भाष्य में व्यस्त रहते थे।

136. महर्षि दयानन्द—एक प्रबुद्ध लेखक

जहां वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे महर्षि दयानन्द, वहीं प्रबुद्ध लेखक भी थे। अपने जीवन की लघुयात्रा में उन्होंने जन कल्याणार्थ अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। यद्यपि समयाभाव के कारण उनके अनेक ग्रन्थ

मुद्रित होने से वंचित रहे।

महर्षि जी ने अपने अमरग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' का लेखन आषाढ़ कृष्णा एकादशी सम्वत् 1931 (सन् 1874) में आरम्भ कर दिया था। सतत् श्रम के पश्चात् उसका प्रथम संस्करण सम्वत् 1932 (1875) में काशी की स्टार प्रेस से प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष उन्होंने अपने प्रख्यात ग्रन्थ संस्कारविधि का लेखन आरम्भ कर दिया था। उन दिनों स्वामी जी सूरत (गुजरात) में ठहरे हुए थे।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, ऋग्वेद एवं यजुर्वेद का भाष्य, पंचमहायज्ञ-विधि, आर्याभिविनय, आर्योद्देश्यरत्नमाला, व्यवहारभानु, गोकरुणानिधि, भ्रान्तिनिवारण और उपदेश मंजरी महर्षि दयानन्द के महत्त्वपूर्ण प्रसिद्ध प्रकाशित ग्रन्थ हैं।

कुरान शरीफ को जानने के लिए ऋषि दयानन्द ने उसका हिन्दी में अनुवाद कराया।

सन्ध्योपासना नाम की पुस्तक उनकी प्रथम कृति है जिसे उन्होंने आगरा में रहते हुए लिखा था। विद्याप्राप्ति के उपरान्त गुरु विरजानन्द जी से आशीर्वाद लेकर ऋषि आगरा में डेढ़-दो वर्ष तक ठहरे रहे थे सन् 1863-64 में। महर्षि के प्रकाशित व अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची पुस्तक के अन्त में दी गई है।

137. सत्य कहने से नहीं चूकता

महर्षि जी को महाराजा जोधपुर यशवन्तसिंह का निमन्त्रण मिला। उन्होंने स्वीकार कर लिया। जोधपुर जाने से पूर्व महर्षि जी के भक्तों ने उनसे विनम्र निवेदन किया कि वे वहाँ न जाएँ। जोधपुर नरेश वेश्यागामी है। आप सत्य कहने से नहीं हटेंगे। आपका वहाँ जाना निरापद नहीं है।

महर्षि जी ने उनसे कहा कि चाहे मेरी अंगुलियों की बत्तियाँ बनाकर उन्हें जला दिया जाए, पर दयानन्द सत्य कहने से कभी नहीं चूकता। मैं अवश्य ही जोधपुर जाऊँगा। ज्येष्ठ बदी अष्टमी, संवत् 1940 (सन् 1883 ई०) को जोधपुर चले गए। वहाँ राज्य की ओर से उनका भव्य

स्वागत किया गया और उन्हें मियाँ फैजुल्ला खाँ के उद्यान में ठहरा दिया गया। स्वामी जी की पूर्ण व्यवस्था जोधपुर राज्य की ओर से की गई। उस उद्यान का विस्तृत आँगन था। उसी में महर्षि जी के प्रवचनों की व्यवस्था कर दी गई। प्रवचन-सभा में राज्य के छोटे-बड़े सभी अधिकारी भाग लेते थे।

प्रवचनों से पूर्व ही राजा राव तेजसिंह ने श्रीचरणों में निवेदन किया कि महाराजा की दैनिकचर्या के सम्बन्ध में कुछ न कहें। महर्षि जी ने उन्हें बताया कि मैं सत्य कहने से कभी नहीं हटता हूँ।

जोधपुर नरेश महाराजा यशवन्तसिंह जी स्वयं भी ऋषि के दर्शन करने उनके समीप जाया करते थे, जब उन्हें अवकाश न होता तो वे महर्षि जी के दर्शन करने के लिए उन्हें महल में सादर आमन्त्रित कर लेते।

एक दिन जब महर्षि जी महाराजा यशवन्तसिंह के महल में पधारे तो नन्हीजान नाम की वेश्या वहाँ उपस्थित थी। महर्षि जी के आगमन की सूचना पाकर महाराजा ने वेश्या की डोली को संकेत से भिजवा दिया, फिर भी महर्षि जी की दृष्टि उस दृश्य पर पड़ गई। वार्ता के समय महर्षि जी ने महाराजा से प्रथम यही चर्चा की।

महर्षि जी ने जोधपुराधीश से कहा कि आप स्वयं को पहचानने का प्रयास करें। प्रजा का पालन-पोषण और उनकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। यदि राजा ही अपने धर्म से पतित हो जाए तो प्रजा का क्या होगा ? वेश्यागमन निन्दनीय कर्म है। ऐसे आचरण से राजा के कुल को कलंक लगता है। प्रजा में उसकी साख गिर जाती है। आप जैसे प्रतिष्ठित राजा को ऐसा करना शोभा नहीं देता।

महाराजा ने महर्षि जी के उपदेश पर ध्यान दिया। उनके और नन्हीजान के सम्बन्ध में दूरी बनने लगी, परन्तु नन्हीजान ने इसे अपने अहं का प्रश्न बना लिया। राजा के समीप उसे अपनी प्रतिष्ठा धूल में मिलती दिखाई दी। राज-दरबार में उसका बड़ा सम्मान था। उच्च अधिकारी भी उसकी भौहों के टेढ़ेपन को सह नहीं पाते थे। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि नन्हीजान ने अपने तिरस्कार का प्रतिशोध लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

138. महर्षि के विरुद्ध विषपान का षड्यन्त्र

पूरे राजदरबार में नन्हीजान के प्रभाव से कोई अनभिज्ञ नहीं था। उसने अपना जाल फैलाना आरम्भ कर दिया। वह बौखला गई थी। धन का उसके पास कोई अभाव नहीं था। जो लोग महर्षि जी की सेवा में नियुक्त थे, उसने उन पर जाल फेंकना आरम्भ कर दिया। उसके जाल में सबसे पहले फंसा कल्लू कहार, यद्यपि वह निष्ठावान् सेवक था और श्रद्धा के साथ विनीत भाव से महर्षि जी की सेवा करता था। एक दिन अचानक ही उनका कई सौ का सामान समेट रात्रि के अँधेरे में कहीं गुम हो गया। राज्य के द्वारा प्रहरी के रूप में नियुक्त छः सैनिक और एक हवलदार भी उस समय पता नहीं कहाँ सो गए थे। इस घटना ने महर्षि जी के मन में संदेह उत्पन्न कर दिया, परन्तु षड्यन्त्र का घटनाचक्र बड़ी तीव्रता से घटता चला गया।

29 सितम्बर सन् 1883 अर्थात् आश्विन बदी चतुर्दशी संवत् 1940 की रात्रि को धौलमिश्र रसोइये से (जो शाहपुरा का रहनेवाला था) महर्षि जी दूध पीकर सो गये। उसी रात्रि महर्षि जी के पेट में भयंकर दर्द आरम्भ हो गया। उल्टियाँ और दस्त शुरू हो गए। मन का चैन जाता रहा। पूरे शरीर में जलन उत्पन्न हो गई। राज्य की ओर से डॉ० अलीमर्दान खाँ को उन्हें देखने के लिए नियुक्त किया गया। उसके औषध-उपचार से पीड़ा और बढ़ गई। महर्षि जी को रहस्य समझते देर न लगी। विषम विष उनके पूरे शरीर में समा गया था। यौगिक क्रियाओं से उसे निकाल देने का समय बीत गया था। उनका पाचक धौलमिश्र नन्हीजान के द्वारा दिए गए भारी प्रलोभन से पतन के गहरे गड्ढे में जा गिरा था। महर्षि जी के प्राण अब सुरक्षित नहीं थे। षड्यन्त्रकारी अपने षड्यन्त्र में सफल हो गए थे। नन्हीजान के अतिरिक्त फैजुल्ला खाँ, चक्रांकित सम्प्रदाय के लोग और जोधपुर के कुछ राजपुरुष भी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित हुए जान पड़ते थे। यही कारण था कि महर्षि जी का रोग अति गम्भीर हो जाने के बावजूद भी किसी को सूचना नहीं दी गई। निरन्तर रोग बढ़ता रहा, परन्तु डॉ० अलीमर्दान को नहीं बदला गया। महर्षि जी के संकेत करने पर भी उन्हें अन्यत्र

चिकित्सा के लिए नहीं भेजा गया।

षड्यन्त्रकारियों ने ज्ञान के ऐसे सूर्य को बुझा देने का जघन्य अपराध किया था, जो अपनी ज्ञान-किरणों से अज्ञान के अँधेरे का अन्त कर देने के लिए कटिबद्ध था। स्वामी जी के अस्वस्थ हो जाने की सूचना 'राजपूताना गजट' के माध्यम से पूरे देश में फैल गई। भक्त उनके दर्शनों को आने लगे। उनकी बेचैनी और बढ़ती गई तो उन्होंने आबू पर्वत पर जाने की इच्छा व्यक्त की। महाराजा यशवन्त ने उनके जोधपुर से विदा होने की व्यवस्था की। उनके लिए विशेष पालकी का प्रबन्ध कर दिया गया। डॉ० सूर्यमल महर्षि जी के साथ गए। महाराजा यशवन्तसिंह ने आबू पर्वत पर ठहरने की पूरी व्यवस्था तार द्वारा कर दी थी।

16 अक्तूबर को जोधपुर से प्रस्थान कर रोहट व पाली होते हुए कार्तिक कृष्णा षष्ठी को महर्षि जी आबू पर्वत पहुँचे। डॉ० लक्ष्मणदास महर्षि जी के भक्त तथा श्रद्धालु थे। उन्होंने लगन से महर्षि जी का उपचार आरम्भ किया, महर्षि जी की वेदना कम हुई, पर विधाता को यह सब अब स्वीकार नहीं था। डॉ० लक्ष्मणदास राजकीय सेवा में थे। उनके उच्चाधिकारियों ने उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें अजमेर भेज दिया। नामी हकीम पीर अमाम अली ने सारा वृत्तान्त सुनकर कहा कि महर्षि जी को संखिया दिया गया है।

स्वास्थ्य लाभ न देखकर भक्त लोग महर्षि जी को अजमेर ले आए। 27 अक्तूबर सन् 1883 अर्थात् कार्तिक कृष्णा द्वादशी, संवत् 1940 को महर्षि जी अजमेर पहुँच गए। उनके दर्शनार्थ भक्तों की भीड़ लग गई। डॉ० लक्ष्मणदास फिर श्रीसेवा में लग गए परन्तु अब सभी ओषधियाँ प्रभावहीन होती चली गईं। महर्षि जी का स्वास्थ्य तेजी से गिरता जा रहा था। देश के विभिन्न भागों से महर्षि जी के दर्शनार्थ उनके भक्त अजमेर पहुँच रहे थे। लाहौर से लाला जीवनदास के साथ पण्डित गुरुदत्त जी भी अजमेर पहुँचे।

दीपावली के दिन का सवेरा था। प्रसिद्ध डॉ० न्यूटन और प्रख्यात हकीम पीर जी स्वामी की सेवा में उपस्थित हुए। देखते ही दोनों ने

कहा—"**इन्हें भयंकर विष दे दिया गया है।**" उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि ऐसे विषम विष के पश्चात् भी यह सन्त अभी तक मृत्यु के साथ लड़ रहा है।

139. ऋषि जीवन की अन्तिम वेला के अन्तिम क्षण

इस जनसेवी सुधारक सन्त के जीवन का अन्तिम प्रहर समीप आ रहा था। सूर्यास्त होने के पूर्व की आभा उनके मुखमण्डल पर आ विराजमान हो गई थी। उनकी वाणी खुल गई थी। वे अपने आसन पर विराजमान हो धीरे-धीरे भक्तों से वार्ता कर रहे थे।

सन्ध्या के उतरने से पूर्व महर्षि जी की आज्ञा से नाई को बुलवाया गया। उस वेदना में भी उन्होंने क्षौर क्रिया (हजामत आदि) कराई। भीगे तौलिए से सिर-मुख पोंछ लिया और सहारे से पलंग पर बैठ गए।

अपने शिष्य आत्मानन्द को बुलाया और कहा—हमारे पीछे की ओर आकर खड़े हो जाओ अथवा बैठ जाओ। फिर कहा—आत्मानन्द क्या चाहते हो? उन्होंने कहा—ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप स्वस्थ हो जाएँ। महर्षि जी कुछ रुककर बोले—"**यह देह है। इसका क्या अच्छा होगा।**" फिर हाथ बढ़ा कर आत्मानन्द जी के सिर पर धरा तथा कहा—"**आनन्द से रहना**"। फिर गोपाल गिरि संन्यासी को बुलाया और कहा—

"तुम क्या चाहते हो ?" उसने भी वही उत्तर दिया। ऋषिवर ने कहा—
"भई! अच्छी प्रकार से रहना।"

इस समय उनके चेहरे पर वेदना का कोई चिह्न नहीं था। महर्षि जी ने दो सौ रुपये व दो दुशाले मंगाकर भीमसेन, आत्मानन्द व डॉ० लछमनदास को भेंट किये, लेकिन उन्होंने लौटा दिये।

140. ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हो

साँझ उतरते ही उन्होंने भवन के ऊपर-नीचे के सब द्वार खुलवा दिए। सब भक्तों को पीछे खड़े होने का आदेश दिया। उस दिन की स्थिति की जानकारी चाही। पंडिया रमालाल ने स्पष्ट किया कि आज कार्तिक कृष्ण पक्ष का अन्त है तथा शुक्ल पक्ष की आदि अमावस, दिन मंगलवार है। यह सुनकर बिनॉय कोठी की छत और दीवारों की ओर दृष्टि की, फिर वेदमन्त्रों का पाठ किया। अन्तिम क्षणों में महर्षि जी के दिव्य दर्शन से पण्डित गुरुदत्त की नास्तिक वृत्ति जाती रही और वैदिकधर्मी बन गये।

वेदपाठ के पश्चात् कुछ ईश्वर उपासना की फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा-सा कथन कर अत्यन्त प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। पश्चात् हर्ष तथा प्रफुल्लित चित्त सहित कुछ समय समाधिस्थ रहकर नयन खोलकर कहने लगे—

"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो। आहा! तैंने अच्छी लीला की।"

बस इतना ही कहा, महर्षि जी महाराज ने स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोककर एक ही बार में बाहर निकाल दिया।

इस प्रकार भारत भाग्य विधाता परिव्राजकाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भौतिक शरीर का परित्याग कर निर्वाण पद प्राप्त किया। उस समय सन्ध्या के छह बजे थे तथा दीपमाला (दीपावली) का दिन था। विक्रमी संवत् 1940 कार्तिक बदी अमावस्या, दिन मंगलवार, ईस्वी सन् 30 अक्तूबर 1883 था।

❀❀❀

विवरणिका

बाल्यावस्था का नाम— **मूलशंकर**

पिता का नाम— **कर्षन तिवारी**

जन्म-स्थान— **ग्राम टंकारा (मोरवी राज्य, गुजरात)**

जन्म— **12 फरवरी सन् 1825 ई०**

1834 यज्ञोपवीत संस्कार, 14 वर्ष की आयु में यजुर्वेद कण्ठस्थ।

1838 शिवरात्रि के दिन झूठे शिव का बोध और सच्चे शिव के खोज की तीव्र इच्छा। शिवरात्रि-उत्सव फाल्गुन बदी, चतुर्दशी, संवत् 1894 (22 फरवरी, सन् 1838 ई०)।

1838 आत्म-बोध-किरण का उदय।

1846 21 वर्ष की आयु पूर्ण होने पर वैवाहिक बन्धन की जोरदार तैयारी।

1846 गृहत्याग। मई मास सन् 1846

1846 सायला (गुजरात) में ब्रह्मचर्य दीक्षा। मूलशंकर से शुद्धचैतन्य बने।

1846 पिता से अन्तिम भेंट-सिद्धपुर (गुजरात) मेले में। अक्तूबर मास।

1848 स्वामी पूर्णानन्द से चाणोद (उ०प्र०) में संन्यास की दीक्षा। शुद्धचैतन्य से स्वामी दयानन्द सरस्वती बने।

1855 सन् 1857 की क्रान्ति की तैयारी में की गई पहली सभा हरिद्वार में सम्बोधन।

1856 कानपुर और प्रयाग के बीच भ्रमण-योगाभ्यास।

1857 पुनः स्वामी पूर्णानन्द से मिलन और उनसे स्वामी विरजानन्द दण्डी मथुरा का पता मिला।

1860 गुरु विरजानन्द के आश्रम मथुरा में। (14.11.1860 से 5.9.1863 तक, 2 वर्ष 7 मास, 22 दिन)

1863 आगरा नगर में यमुना किनारे विराजमान। यहीं पर पहली पुस्तक 'सन्ध्योपासना' की रचना की।

1866 अजमेर नगर में पादरियों से शास्त्रार्थ।

1867 हरिद्वार में कुम्भ के मेले में भीमगोडा के ऊपर खण्डन पताका गाड़ी। यहां पर आज वैदिक मोहन आश्रम है।

1868 कर्णवास में मदान्ध राव कर्णसिंह की तलवार के टुकड़े किये।

1869 कानपुर में गंगा-तट पर विश्राम। कानपुर से काशी गये और वहाँ के पण्डितों से ऐतिहासिक शास्त्रार्थ किया।

1873 केशवचन्द्रसेन से कलकत्ता में भेंट। वहाँ से कासगंज, अलीगढ़ होते हुए गुरु की नगरी मथुरा में।

1874 सत्यार्थप्रकाश: लेखन प्रारम्भ। (वैचारिक क्रान्ति और वैदिक संस्कृति का ग्रन्थ)

1874 मुम्बई नगर में प्रवेश।

1875 मुम्बई के गिरगांव मुहल्ला में पहली आर्यसमाज की स्थापना।

1875 पूना में दिये 15वें प्रवचन में स्वलिखित आत्मकथा सुनाई।

1877 चाँदापुर में मौलवी, पादरी और पण्डितों से एक साथ शास्त्रार्थ।

1877 लाहौर में पर्दापण। आर्यसमाज के दस नियम व आर्यसमाज की स्थापना की।

1878 रुड़की में पधारकर धर्मोपदेश। वहाँ से मेरठ, यहां आर्यसमाज की स्थापना करके फिर सहारनपुर पहुँचकर कर्नल स्काट और मैडम ब्लैवट्स्की से भेंट की।

1878• रेवाड़ी (हरियाणा) में प्रथम गोशाला की स्थापना।

1879 बरेली में धर्मोपदेश। नास्तिक मुंशीराम उनके उपदेशों से प्रभावित। वहाँ से शाहजहाँपुर जाकर लक्ष्मण शास्त्री से शास्त्रार्थ। शाहजहाँपुर से चलकर फर्रुखाबाद होते हुए कानपुर चले गए।

1879 हरिद्वार में मूला मिस्त्री के खेत में पड़ाव। जहां पर आर्यनगर में

(ज्वालापुर) आजकल महर्षि दयानन्द स्मारक बना हुआ है।

1881 पण्डित लेखराम की भेंट।

1881 चित्तौड़ और वहाँ से मुम्बई पहुँच गए।

1882 उदयपुर में राणा सज्जनसिंह द्वारा एकलिंग महादेव की महन्ती का प्रस्ताव। महर्षि जी द्वारा सज्जनसिंह को लताड़।

1883 परोपकारिणी सभा की स्थापना उदयपुर में।

1883 जोधपुर में प्रवेश। वेश्या रखने पर राजा यशवन्तसिंह को फटकार। विरोधियों द्वारा महर्षि जी के विरुद्ध प्राणान्तक षड्यन्त्र।

1883 जोधपुर प्रवास में 29 सितम्बर को रसोइए धौलमिश्र द्वारा दूध में विष मिला कर दिया गया।

1883 30 अक्तूबर, दीपावली के दिन सायं 6 बजे भिनाय कोठी अजमेर (राजस्थान) में देहत्याग।

महर्षि का जीवनकाल—

58 वर्ष, 8 मास, 21 दिन।

महर्षि दयानन्द की गुरु-शिष्य परम्परा—

स्वामी ओमानन्द, आयु 160 वर्ष (सन् 1857 में)

स्वामी पूर्णानन्द, आयु 110 वर्ष (सन् 1857 में)

स्वामी विरजानन्द, आयु 79 वर्ष (सन् 1857 में)

महर्षि दयानन्द सरस्वती, आयु 33 वर्ष (सन् 1857 में)

❖❖❖

टिप्पणी—ऋषि की जन्मतिथि के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान् 2 सितम्बर 1824 ई०, कुछ 19 फरवरी 1825, कुछ सितम्बर 1824, कुछ 10 फरवरी 1825 ई० मानते हैं। अधिकतर विद्वान् 12 फरवरी 1825 ई० मानते हैं, इसलिए हम इसी तिथि को इस पुस्तक में दे रहे हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित
ग्रन्थों की सूची

प्रकाशित ग्रन्थ—

1. सन्ध्या की पुस्तक
2. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
3. ऋग्वेद का भाष्य
4. यजुर्वेद का भाष्य
5. चतुर्वेद विषय सूची
6. वेदभाष्य के दो नमूने
7. सत्यार्थप्रकाश
8. पञ्चमहायज्ञविधि
9. आर्याभिविनय
10. संस्कारविधि
11. आर्योद्देश्यरत्नमाला
12. व्यवहारभानु
13. गोकरुणानिधि
14. अद्वैतमत खण्डन
15. वेदान्तिध्वान्त निवारण
16. वेदविरुद्धमत खण्डन
17. भागवत खण्डन
18. शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण
19. भ्रान्ति निवारण
20. भ्रमोच्छेदन
21. अनुभ्रमोच्छेदन
22. काशी शास्त्रार्थ
23. सत्यधर्मविचार या मेला चांदापुर
24. शास्त्रार्थ विषयक अन्य ग्रन्थ

25-44. व्याकरण विषयक 20 ग्रन्थ
   - 25-38. वेदाङ्ग प्रकाश (14) भाग
   - 39. संस्कृत वाक्य प्रबोध
   - 40. निरुक्त (मूल)
   - 41-44. अष्टाध्यायीभाष्य (4 अध्याय)

45. गोतम-अहल्या और इन्द्र-वृत्रासुर की सत्यकथा
46. गर्दभतापिनी उपनिषद्
47. आत्मचरित (स्वलिखित) या स्वकथित जीवनचरित
48. पूना प्रवचन (उपदेश मंजरी) पूना में दिये गये 15 प्रवचनों का संग्रह
49. बम्बई प्रवचन
50. पत्र एवं विज्ञापन

अप्रकाशित ग्रन्थ—

1. ऋग्वेद मन्त्र सूची
2. यजुरथर्व मन्त्र सूची
3. अथर्वमन्त्र सूची
4. अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची
5. निरुक्तादि विषय सूची
6. ऐतरेय ब्राह्मण सूची
7. शतपथ ब्राह्मण सूची
8. तैत्तिरीयोपनिषद् मिश्रित सूची
9. ऋग्वेद विषयस्मरणार्थ सूची
10. निरुक्तशतपथमूल सूची
11. शतपथ ब्राह्मण सूची
12. धातुपाठ सूची
13. वार्तिक संकेत सूची
14. निघण्टु सूची
15. कुरान सूची
16. बाइबल सूची
17. जैन धर्म सूची
18. चतुर्वेद विषय सूची
19. 44 वार्तिक सभाष्य
20. 73 मनुस्मृति के उपयोगी श्लोकों का संग्रह
21. 74 विदुरप्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह
22. 81 ओषधियों का यादी पत्र, स्वामी जी के लिखे हुए
23. 83 कुरान हिन्दी भाषा में अनुवाद, स्वामी जी का बनाया हुआ
24. 94 प्राकृत भाषा का संस्कृत भाषा के साथ अनुवाद अस्त-व्यस्त
25. 95 जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत
26. 96 रामस्नेही मत गुटका

महापुरुषों की दृष्टि में महर्षि दयानन्द

◆ महर्षि दयानन्द की सबसे बड़ी देन यह थी कि उन्होंने देश को दीनता व दल-दल में गिरने से बचाया। वास्तव में उन्होंने भारतीय स्वाधीनता की नींव रखी। *—लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल*

◆ ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोये हुए भारत को जाग्रत किया। *—लोकमान्य तिलक*

◆ महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो उसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता हैं। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया, उससे कहीं अधिक आर्यसमाज ने पंजाब और संयुक्तप्रान्त में किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्यसमाजी है। महर्षि दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ। संगठन-कार्यों के सामर्थ्य और प्रयास की दृष्टि से आर्यसमाज अनुपम संस्था है। *—श्री सुभाषचन्द्र बोस*

◆ महर्षि दयानन्द ने पददलित भारत का पुनरुत्थान किया तथा राष्ट्र को नवजीवन का सन्देश दिया। उन्होंने सामाजिक क्रान्ति की एवं अंधश्रद्धा को दूर करने का प्रयत्न किया और राष्ट्र का निर्माण किया।

—पूर्व प्रधानमंत्री श्री मोरार जी देसाई

◆ दयानन्द का चरित्र मेरे लिए ईर्ष्या और दुःख का विषय है।.... महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा है। *—महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी*

◆ महर्षि दयानन्द मेरे गुरु हैं। मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है।

इन दोनों की गोद में मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्यपालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया। *—पंजाब केसरी लाला लाजपतराय*

◆ जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा तो नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायेगा।

—सर यदुनाथ सरकार

◆ महर्षि दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे।... वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन-जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सब से अधिक प्रबल शक्ति उन्हीं की थी। वे पुनर्निर्माण और राष्ट्र-संगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से थे।

—फ्रेंच लेखक रोम्यां रोलां

◆ मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने में अशक्त हैं। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य-संग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अत: मैं राष्ट्रवीर समझकर उनकी वन्दना करता हूँ। *—साधु टी० एल० वासवानी*

◆ महर्षि दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्सन्देह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वे सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे। *—रेवरेण्ड सी० एफ० एण्ड्रयूज*

◆ आर्यसमाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। महर्षि दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धान्त दिया। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है···। —ब्रिटेन के *(स्व०) प्रधानमन्त्री रेमज़े मैकडॉनल्ड*

◆ महर्षि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए' का नारा लगाया था।···आर्यसमाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएँ हैं और उस महान् पुरुष के लिए, जिसका आप आर्य आदर करते

हैं, मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।

—श्रीमती ऐनी बीसेण्ट

• महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुयायी उन्हें देवता-तुल्य जानते थे, और वे निस्सन्देह इसी योग्य थे। वे इतने विद्वान् और अच्छे आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान-पात्र थे। उनके समान व्यक्ति समूचे भारत में इस समय कोई नहीं मिल सकता। अतः प्रत्येक व्यक्ति को उनकी मृत्यु पर शोक करना स्वाभाविक है। *—सर सैय्यद अहमद खाँ*

• महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भारत का एकीकरण चाहते थे। भारतवासियों को राष्ट्रीयता के सूत्र में ग्रथित करने के लिए उन्होंने देश को विदेशी दासता से मुक्त कराना आवश्यक समझा था।''*—श्री रामानन्द चटर्जी (सम्पादक 'मॉडर्न रिव्यू')*

• महर्षि दयानन्द भारतवर्ष के उन धार्मिक महापुरुषों में से एक हैं, जिनका गुणानुवाद करने में ही जीवन समाप्त हो सकता है।

—श्रीमती सरलादेवी चौधरानी

• महर्षि दयानन्द भारत-माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदैव चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वे भारत-माता के उन सपूतों में से हैं, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाए थोड़ा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, परन्तु स्वामी उन सब से बढ़कर थे। *—खदीजा बेगम एम० ए०*

• ईसाईयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से हिन्दुस्तानियों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बांधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो महर्षि दयानन्द की ओर इशारा किया जा सकता है। 19वीं सदी में महर्षि दयानन्द ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है, उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुँचा है।

—पीर मुहम्मद यूनिस

आचार्य ज्ञानेश्वरार्य
वानप्रस्थ साधक आश्रम
रोजड़ (गुजरात)

डॉ० विनय
विद्यालंकार
एसोसिएट प्रो० हल्द्वानी

प्रा० डा० सुमेधा आर्या
कन्या गुरुकुल,
चोटीपुरा (उ०प्र०)

आचार्या डा० सुकामा
आर्या, कन्या गुरुकुल,
चोटीपुरा (उ०प्र०)

कृष्णलाल पंवार
परिवहन एवं आवास मंत्री
हरियाणा सरकार

डॉ० रामकृष्ण
प्रधान, आर्य वा०प्र०आ०
ज्वालापुर, हरिद्वार

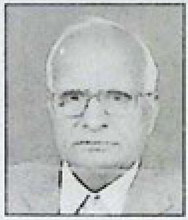

प्रो० ओमकुमार
वैदिक प्रवक्ता
जींद

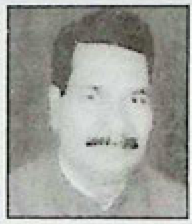

पं० भरतलाल शास्त्री
संरक्षक, आर्यसमाज
हांसी (हिसार)

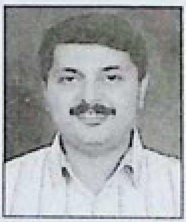

शिवपाल चौधरी
एम.डी. न्यू इंडिया
कंट्रैक्टर एंड डेवलपर्स
चण्डीगढ़

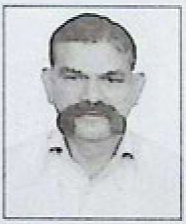

चौ० रणवीर सिंह आर्य
पूर्वप्रधान, आर्य व.मा.
विद्यालय, पानीपत

दलजीत सिंह
•Ex S.E. (DHBVN)
जींद

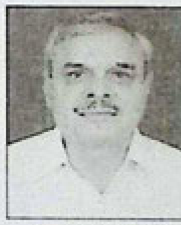

राजसिंह सहरावत
राजीव नगर, गुड़गांव

सुरेन्द्र सिंह तोमर
गवर्मेण्ट इलैक्ट्रीक
कंट्रैक्टर, गुड़गांव

इन्द्रजीत बत्रा
चेयरमैन, डीएवी
स्कूल, सोनीपत

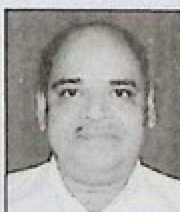

कमलकान्त आर्य
हलवाई हट्टा,
पानीपत

सूरजभान, XEN
सदस्य, आर्यसमाज
थर्मल कालोनी, पानीपत

प्रेरणा की प्रतिमा

- **जिस क्षण देह में** दुर्बलता प्रतीत हो, उसी क्षण एक महान् विशाल-काय संन्यासी का स्मरण करो।
- **जब तुम्हारे मन में** शिथिलता या कायरता का प्रवेश हो, उसी क्षण जीवन और उत्साह से ओत-प्रोत, उस तेजस्वी देशभक्त का स्मरण करो।
- **जिस क्षण तुम्हारे हृदय में** मोह और विलास का साम्राज्य प्रवेश हो, उसी क्षण धन को ठोकर मारने वाले उस नैष्ठिक ब्रह्मचारी को याद करो।
- **अपमान से आहत होकर जिस क्षण तुम** अपनी नजर ऊँची न उठा सको, उसी क्षण हिमालय के समान अडिग और उन्नत व्यक्ति के मुख को अपनी कल्पनाओं में उपस्थित करो।
- **मृत्यु का वरण करते हुए डर लगे तो** उस निर्भयता की मूर्ति का ध्यान करो।
- **द्वेषभाव से उत्तप्त होकर जब तुम** अपने विरोधी को क्षमा करने में हिचकिचाहट का अनुभव करो तो उसी क्षण विष पिलाने वाले को आशीर्वाद देते हुए एक राग-द्वेष से विमुक्त संन्यासी को याद करो।

वे प्रेरणा की प्रतिमा हैं गौरवशाली **महामानव महर्षि दयानन्द सरस्वती जी,** जो भारतीय महापुरुषों में सर्वोच्च शिखर पर विराजमान हैं।

प्रकाशक : सर्वकल्याण धर्मार्थ न्यास (पंजी०)
पानीपत (हरियाणा)